अगस्त, 2014

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक **सहायक संपादक**
अनूप कुमार वार्ष्णेय कमलाकान्त

महत्वपूर्ण निर्णय

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 28, नियम 9 और धारा 151 – पूर्व में वाद भूमि के सीमांकन के संबंध में स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति और रिपोर्ट – न्यायालय द्वारा नियुक्ति करने से इनकार – न्यायोचित्य – यह न्यायालय का विवेकाधिकार है कि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए आयुक्त की नियुक्ति के लिए आदेश पारित करे अथवा इनकार करे – जहां ऐसे आवेदन का आशय मामले को विलंबित करना हो वहां न्यायालय द्वारा आयुक्त की पुनः नियुक्ति से इनकार करना न्यायोचित है ।

त्रिलोक सिंह बनाम **नरदीप सिंह** 219

पृष्ठ संख्या 113 – 258 **(2014) 2 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अगस्त, 2014 (पृष्ठ संख्या 113 – 258)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अगस्त, 2014

निर्णय-सूची

पृष्ठ संख्या

अजहरउल करीम और अन्य **बनाम** पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 205)

अतीउल करीम **बनाम** पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 205)

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम **बनाम** कृष्ण मुरारी और एक अन्य 144

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** कमला देवी और अन्य 252

कंचन महतो और एक अन्य **बनाम** श्रीमती चम्पा देवी और अन्य 179

कैलाश नारायण महावर **बनाम** सोना बाई (श्रीमती) और अन्य 197

खांडोकर अफिया सुलताना और अन्य **बनाम** पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य 205

गीता कंवर (श्रीमती) **बनाम** राज्य और अन्य 213

जयामति नरेन्द्र शाह **मार्फत** विधिक प्रतिनिधि और अन्य **बनाम** नरेन्द्र अमृतलाल शाह 182

टी. जय सिंह **बनाम** प्यारो कौर (श्रीमती) और अन्य 126

त्रिलोक सिंह **बनाम** नरदीप सिंह 219

नरेन्द्र कुमार **बनाम** मुख्य सूचना आयुक्त, उत्तराखंड और अन्य 133

पृष्ठ संख्या

नूपुर बानिक़ और अन्य **बनाम** पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 205)

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड **बनाम** श्रीमती शशि बाला और अन्य 242

प्रमोद कुमार **बनाम** बिहार राज्य और अन्य 176

मुप्पल्ला वीरय्या **बनाम** चगन्ती जय लक्ष्मी 113

मोहम्मद हारेन अहमद और अन्य **बनाम** असम राज्य और अन्य 168

रमेश तिवारी **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य 138

लश्करी राम **बनाम** बक्शी राम 223

सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर और अन्य **बनाम** तिलक राज 237

सुमति और अन्य **बनाम** कमलम्मा 147

हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य **बनाम** यूसुफ रजा और अन्य 247

संपादक-मंडल

डा. संजय सिंह,
सचिव, विधायी विभाग

श्रीमती शारदा जैन, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

प्रो. डा. वैभव गोयल,
सुभारती विश्वविद्यालय, मेरठ
विधि विभाग

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री लालजी प्रसाद,
सेवानिवृत्त प्रधान संपादक,
वि.सा.प्र.

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

श्री महमूद अली खां,
संपादक

श्री जुगल किशोर,
संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

सहायक संपादक	:	सर्वश्री विनोद कुमार आर्य, कमला कान्त, अविनाश शुक्ल और असलम खान
उप-संपादक	:	सर्वश्री दयाल चन्द ग्रोवर, महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 12

वार्षिक : ₹ 135

© 2014 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित तथा.................................. द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमश: चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ को पाठकों की सुविधा के लिए श्रृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की
सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटोरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों के सिवाय) सेवा विनियम, 1981

– विनियम 63 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनहीनता और अनियमितताओं के आधार पर विभागीय कार्यवाही – निगम के चेयरमैन द्वारा अपील में सेवा से हटाने के आदेश को रद्द किया जाना – बहाली के पश्चात् कर्मचारी का मूल वेतन पूर्वतर मूल वेतन पर नियत किया जाना – नियोजक अपील मंजूर होने और उसे आक्षेपित न करने की स्थिति में कर्मचारी को पुराने वेतन पर प्रत्यावर्तित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है – अतः ऐसे किसी आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता ।

रमेश तिवारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** 138

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (1971 का 70)

– धारा 12 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – उच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में देरी – अवमानना आवेदन – उत्तरवर्ती आवेदनों के कारण संवर्धन और परिस्थितियों में परिवर्तन – संवर्धनों के आधार पर आवेदन निष्फल हो जाने के कारण अवमानना कार्यवाही करना उचित नहीं है ।

प्रमोद कुमार बनाम **बिहार राज्य और अन्य** 176

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59)

– धारा 93 और 117 [सपठित असम मोटर यान नियम, 2003 – नियम 73, 93 (4) और 94] – बसों को रोकने और खड़ा करने के लिए अनुज्ञप्ति की अपेक्षा

पृष्ठ संख्या

– विहित फीस लेकर विनिर्दिष्ट स्थान पर यात्री पटल (टिकट खिड़की) खोलने के लिए रसीद जारी की जानी – ऐसी रसीद के आधार पर ऐसे स्थान पर बसों को रोकने और खड़ा करने के लिए अनुज्ञा प्रदान करना नहीं माना जा सकता ।

मोहम्मद हारेन अहमद और अन्य बनाम **असम राज्य और अन्य** 168

– धारा 140 और 173 – अंतरिम प्रतिकर – अधिकरण का आदेश – अपील या पुनरीक्षण – मोटर यान अधिनियम की धारा 140 के अधीन पारित अंतरिम प्रतिकर का आदेश अधिनिर्णय के समान होता है अतः ऐसा आदेश धारा 173 के अधीन अपीलनीय है ।

कंचन महतो और एक अन्य बनाम **श्रीमती चम्पा देवी और अन्य** 179

– धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमाकृत को पक्षकार न बनाया जाना – मृतक के माता-पिता, पत्नी और पुत्रों द्वारा प्रतिकर के लिए दावेदारी – अधिनियम का उद्देश्य यानी दुर्घटनाओं में आहतों तथा नुकसान पहुंचने वाले व्यक्तियों की शीघ्रातिशीघ्र सहायता करना है – अतः, प्रक्रियात्मक कमियों और तकनीकी खामियों को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए ।

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **श्रीमती शशि बाला और अन्य** 242

– धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा यह आक्षेप उठाना कि मृतक ट्रैक्टर पर यात्रा कर रहा था – साक्ष्य से यह साबित होना कि घटना के समय मृतक ट्रैक्टर के

पृष्ठ संख्या

ऊपर नहीं बैठा हुआ था अपितु वह ट्रैक्टर से नीचे उतर गया था – दावेदारों को प्रतिकर ठीक ही अधिनिर्णीत किया गया है ।

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड बनाम **कमला देवी और अन्य** 252

– धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अधिकरण द्वारा चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने का निष्कर्ष निकाला जाना – चालक द्वारा इन निष्कर्षों को प्रश्नगत न करके बस स्वामियों द्वारा आक्षेपित किया जाना – ऐसे निष्कर्षों को केवल वह व्यक्ति प्रश्नगत करने का अधिकार रखता है जिसके विरुद्ध ऐसे निष्कर्ष निकाले गए हों न कि उससे भिन्न व्यक्ति ।

हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम **यूसुफ रजा और अन्य** 247

– धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – विपक्षी पक्षकार द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट आदि को विवादित न करना – विपक्षी द्वारा यह अभिवाक् करना कि उन्होंने न्यायालय से बाहर समझौता करने का प्रयास किया था – यह माना जाएगा कि विपक्षी ने घटना होना स्वीकार किया है – अतः निचले अधिकरण के अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर और अन्य बनाम **तिलक राज** 237

– धारा 163क, 166 और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – क्षति के कारण आहत व्यक्ति की टांग काटने से पृथक् हो जाना – घटना में बस के अन्तर्वलन से इनकार – प्रतिरक्षा में दाखिल किए

पृष्ठ संख्या

गए कागजात को साबित न किया जाना – प्रतिरक्षा साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता – प्रतिकर ठीक ही अधिनिर्णीत किया गया है ।

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम बनाम **कृष्ण मुरारी और एक अन्य** 144

– धारा 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – प्रतिकर का परिमाण – मृतक की आयु 23 वर्ष को दृष्टिगत करते हुए "13" का गुणक लागू किया जाना – अधिकरण द्वारा ठीक ही गुणक लागू किया गया है ।

हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य बनाम **यूसुफ रजा और अन्य** 247

– धारा 166 खंड (1) और खंड (2) – मोटर दुर्घटना – मृतक या आहत के अभिकर्ता या मुख्तारनामा धारक द्वारा दावा – अधिकारिता – मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल कर सकता है जिसकी स्थानीय सीमाओं के भीतर वह निवास करता है या कारबार करता है – धारा 180 का ऐसा निर्वचन इसके प्रयोजन को विफल करने वाला हो, स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

खांडोकर अफिया सुलताना और अन्य बनाम **पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य** 205

राजस्थान के मृतक सरकारी सेवक के आश्रितों की अनुकंपा नियुक्ति नियम, 1996

– नियम 5 (2) – मृतक के आश्रितों में से एक की अनुकंपा नियुक्ति – नियुक्त व्यक्ति द्वारा यह वचनबंध दिया जाना कि वह मृतक के अन्य आश्रितों का

पृष्ठ संख्या

भरणपोषण करेगी – इस आधार पर भरणपोषण करने से इनकार कि दावेदार को पेंशन प्राप्त होती है – नियमों के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्त व्यक्ति कुटुम्ब के सदस्यों का भरणपोषण करने से इस आधार पर इनकार नहीं कर सकता कि दावेदार को अन्य स्रोत से आय प्राप्त होती है – नियुक्त व्यक्ति वचनबंध के अनुसार मृतक के आश्रितों का भरणपोषण करने के लिए दायित्वाधीन है ।

गीता कंवर (श्रीमती) बनाम **राज्य और अन्य** 213

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 20, नियम 18 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 68, 69 और 90] – अरजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर संपत्ति विभाजन के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा विल को विवादित किया जाना – वादी द्वारा विधि के अधीन यथाअपेक्षित रीति में विल को साबित न किया जाना – सम्पत्ति का विभाजन उत्तराधिकार के आधार पर किया जाना चाहिए न कि विल के आधार पर ।

मुप्पल्ला वीरय्या बनाम **चगन्ती जय लक्ष्मी** 113

– आदेश 22 का नियम 4 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – विधिक प्रतिनिधियों का प्रतिस्थापन – विलम्ब माफी – आवेदक का अशिक्षित ग्रामवासी या निर्धन नहीं होना – आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रत्येक अवसर पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना – आवेदक के अधिवक्ता द्वारा जिम्मेदारी और तत्परतापूर्वक कार्य करना – उपर्युक्त तथ्यों से यह दर्शित होता है कि विलम्ब माफी के लिए पर्याप्त कारण नहीं हैं – इन परिस्थितियों में, आवेदन नामंजूर किया जाना युक्तियुक्त और समुचित है ।

कैलाश नारायण महावर बनाम **सोना बाई (श्रीमती) और अन्य** 197

पृष्ठ संख्या

– आदेश 28, नियम 9 और धारा 151 – पूर्व में वाद भूमि के सीमांकन के संबंध में स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति और रिपोर्ट – न्यायालय द्वारा नियुक्ति करने से इनकार – न्यायोचित्य – यह न्यायालय का विवेकाधिकार है कि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए आयुक्त की नियुक्ति के लिए आदेश पारित करे अथवा इनकार करे – जहां ऐसे आवेदन का आशय मामले को विलंबित करना हो वहां न्यायालय द्वारा आयुक्त की पुनः नियुक्ति से इनकार करना न्यायोचित है ।

त्रिलोक सिंह बनाम **नरदीप सिंह** 219

– धारा 100 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क] – द्वितीय अपील – संविदा का निष्पादन – भागिक पालन – प्रत्यर्थी की ओर से संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं होना – संविदा के अग्रसरण में संविदा की विषयवस्तु का कब्जा भी नहीं प्राप्त करना – संविदा का निष्पादन कराने का हकदार नहीं होना – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि प्रत्यर्थी ने संविदा के अग्रसरण में संविदा की विषयवस्तु विवादित भूमि का कब्जा नहीं लिया है तथा न ही संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था तो वह संविदा का निष्पादन कराने का हकदार नहीं होगा ।

लश्करी राम बनाम **बक्शी राम** 223

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22)

– धारा 6 और 20 – सूचना प्रदाय करने में विलंब – शास्ति – अधिकारी द्वारा विलंब से सूचना प्रदाय करने के लिए समुचित कारण बताया जाना – जहां सूचना का

पृष्ठ संख्या

प्रदाय करने वाले प्राधिकारी द्वारा समय के भीतर सूचना प्रदान न करने के लिए समुचित कारण बताए गए हों वहां सूचना देने में कतिपय विलंब होने पर अति तकनीकी आधार पर शास्ति अधिरोपित करना उचित नहीं है ।

नरेन्द्र कुमार बनाम **मुख्य सूचना आयुक्त, उत्तराखंड और अन्य** 133

स्टाम्प अधिनियम, 1899 (1899 का 2)

– धारा 35 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)] – धारा 77 – विक्रय-विलेख का प्रारूप – विक्रेताओं द्वारा प्रारूप पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् विलेख का निष्पादन करने से इनकार – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – कार्यालय द्वारा स्टाम्प दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत न होने के कारण साक्ष्य में स्वीकार करने के संबंध में आक्षेप – विधिमान्यता – रजिस्ट्रीकरण का प्रश्न निष्पादन के पश्चात् ही उत्पन्न होना – ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है ।

टी. जय सिंह बनाम **प्यारो कौर (श्रीमती) और अन्य** 126

हिन्दू विधि

– सहदायिक सम्पत्ति – विभाजन – पति से पूर्व पत्नी की मृत्यु – पत्नी द्वारा सहदायिक सम्पत्ति की वसीयत – पत्नी किसी अंश की तभी हक़दार है जब पति ने या पुत्रों ने पहले ही विभाजन करा लिया हो – कोई विधवा केवल उस हित के विभाजन का दावा कर सकती है जिसका उसका पति हक़दार था ।

जयामति नरेन्द्र शाह मार्फत **विधिक प्रतिनिधि और अन्य** बनाम **नरेन्द्र अमृतलाल शाह** 182

पृष्ठ संख्या

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 28 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 494 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 31 और 34] – विवाह तत्समय प्रवृत्त रीति-रिवाज के साथ सम्पन्न नहीं होना – नातेदारों और अन्य व्यक्तियों द्वारा उनकी पति-पत्नी के रूप में एक साथ एक ही स्थान पर रहने की पुष्टि नहीं करना – वैध विवाह की उपधारणा नहीं होना – इस हैसियत में निष्पादित दस्तावेज शून्य और अवैध होना – यदि अभिलेख पर के साक्ष्यों (मौखिक और दस्तावेजी) से यह साबित नहीं होता है कि किसी स्त्री-पुरुष के बीच तत्समय प्रवृत्त रीति-रिवाज के साथ विवाह सम्पन्न हुआ था और उनके विवाह की पुष्टि उनके नातेदार और अन्य व्यक्ति भी नहीं करते हैं तथा वे एक साथ रहते भी नहीं थे तो इन परिस्थितियों में उनके बीच वैध विवाह की उपधारणा नहीं की जा सकती है और ऐसी दशा में, पत्नी की हैसियत से ऐसे पति की सम्पत्ति के बारे में निष्पादित कोई भी दस्तावेज शून्य और अवैध होगा ।

सुमति और अन्य बनाम **कमलम्मा** 147

मुप्पल्ला वीरय्या

बनाम

चगन्ती जय लक्ष्मी

तारीख़ 7 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति एल. नरसिह्मा रेड्डी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 20, नियम 18 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 – धारा 68, 69 और 90] – अरजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर संपत्ति विभाजन के लिए वाद – प्रतिवादी द्वारा विल को विवादित किया जाना – वादी द्वारा विधि के अधीन यथाअपेक्षित रीति में विल को साबित न किया जाना – संपत्ति का विभाजन उत्तराधिकार के आधार पर किया जाना चाहिए न कि विल के आधार पर ।

यह आवेदन तारीख 29 अक्तूबर, 2011 के उस निर्णय का पुनर्विलोकन करने का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया है जो इस न्यायालय द्वारा 2010 के एस. ए. सं. 1255 में पारित किया गया था । द्वितीय अपील 2005 के मूल वाद सं. 486 में दिए गए निर्णय से उद्भूत हुई थी जो न्यायालय के समक्ष आवेदक द्वारा फाइल की गई थी । पुनर्विलोकन आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह न्यायालय इस तथ्य के प्रति सजग है कि पुनर्विलोकन अतिरिक्त अपील के सदृश नहीं हो सकता और इसे केवल विधि में परिसीमित और विनिर्दिष्ट आधारों पर मान्यता दी जा सकती है और तभी पुनर्विलोकन को ग्रहण किया जा सकता है । तथ्यतः जहां एक जैसे तथ्यों के आधार पर दो मत संभव हों, वहां पुनर्विलोकन को ग्रहण करने के लिए कोई न्यायोचित्य नहीं हो सकता । ऐसा केवल वहां है जहां कोई महत्वपूर्ण तथ्य न्यायालय के ध्यान से छूट गया हो या न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत विधि के विनिर्दिष्ट उपबंध के प्रतिकूल हो या ऐसा कोई आबद्धकर पूर्व

निर्णय हो, केवल वहां पुनर्विलोकन को ग्रहण किया जा सकता है । वर्तमान मामले में तथ्य पूर्ण रूप से विवादित नहीं हैं । वादी और प्रतिवादी दोनों ही समान पूर्व उत्तराधिकारी पकीराम्मा की दोनों पुत्रियों के बच्चे हैं । यदि प्राकृतिक उत्तराधिकार को अनुज्ञात किया जाए तो पकीराम्मा द्वारा धारित संपत्ति वादी और प्रतिवादी के बीच समान रूप से विभाजित की जानी चाहिए । तथापि, प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया है कि पकीराम्मा ने प्रतिवादी की माता के हक में वादान्तर्गत सम्पूर्ण संपत्ति की वसीयत करते हुए द्रोपदम्मा के हक में प्रदर्श बी-3 निष्पादित की थी । इस तथ्य से कि द्रोपदम्मा ने प्रतिवादी के हक में एक दान-विलेख निष्पादित किया था, अधिक अंतर नहीं पड़ता क्योंकि उत्तराधिकार के द्वारा भी प्रतिवादी को अंश मिलेगा, निस्संदेह किसी अन्य विधिक उत्तराधिकार के दावे के अध्यधीन । अनुप्रमाणन एक प्रक्रिया है जो विधि द्वारा विहित है और जो दस्तावेजों के विशिष्ट प्रवर्ग के विधिमान्य निष्पादन के लिए विहित है । किसी व्यक्ति द्वारा निष्पादित कोई दस्तावेज इसके निष्पादनकर्ता की परीक्षा करके साबित किया जा सकता है और यदि आवश्यक हो तो उन व्यक्तियों की परीक्षा करके साबित किया जा सकता है जो इसके निष्पादन के साक्षी हैं । वर्तमान मामले में निष्पादनकर्ता के हस्ताक्षरों का सुबूत इस प्रयोजन को पूरा कर सकता है । तथापि, अनुप्रमाणन एक पूर्णतया भिन्न बात है । यह केवल ऐसे दस्तावेजों के कतिपय प्रवर्ग के बारे में है, यथा अधिनियम की धारा 66 के अधीन विल, संपत्ति अंतरण अधिनियम के अधीन दान-विलेख और बंधक विलेख का अनुप्रमाणन आवश्यक है । इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अनुप्रमाणन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विधि यह सुनिश्चित करती है कि किसी दस्तावेज की संभाव्यता अस्तित्व में लाने के लिए कपटपूर्ण साधनों को बहिष्कृत किया जाए । स्पष्टतया उन परिणामों की विधिक प्रकृति को जो ऐसे दस्तावेजों से निकले हैं जिनका अनुप्रमाणन आवश्यक है, ध्यान में रखते हुए अधिनियम इसको साबित करने के लिए पूर्णतया भिन्न प्रक्रिया विहित करता है । इस संबंध में अधिनियम की धारा 68 और 69 में प्रक्रिया विहित की गई है । अधिनियम की धारा 68 का आरंभिक वाक्य यह उपबंधित करता है कि यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणन किया जाना विधि द्वारा अपेक्षित है तो उसे तब तक साक्ष्य के रूप में उपयोग में नहीं लाया जाएगा जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी उसके निष्पादन को साबित करने के लिए न बुलाया गया हो । अधिनियम की धारा 69 अनुसरण की जाने वाली उस

प्रक्रिया को विहित करती है जहां अनुप्रमाणन साक्षी उपलब्ध न हो सकें । जब तक कि ऐसा व्यक्ति जो किसी ऐसे दस्तावेज का अवलंब लेता है जिसको विधितः प्रमाणित किए जाने की आवश्यकता है, अधिनियम की धारा 68 और 69 के अधीन अनुध्यात उपायों का प्रयोग नहीं करता है, वह उसका साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं कर सकता । उन दस्तावेजों के प्रवर्ग में भी जिनकी विधितः अनुप्रमाणन की आवश्यकता है, विल का प्रमाणन भिन्न आधार पर होता है । दस्तावेजों के अन्य सभी प्रवर्गों में इस बात की पूरी संभावना होती है कि दस्तावेज का निष्पादनकर्ता जीवित है । यदि कोई पक्षकार ऐसे किसी दस्तावेज का जो निष्पादनकर्ता से दस्तावेज के निष्पादन के संबंध में अधिनियम की धारा 68 के निबंधनों में स्वीकृति प्राप्त करना चाहता है, अधिनियम की धारा 68 को दृष्टिगत करते हुए सारभूत सीमा तक भार कम हो जाएगा । तथापि, ऐसी संभावना किसी विल के संबंध में विद्यमान नहीं होती है । इसका कारण यह है कि कोई विल अपने निष्पादनकर्ता के जीवित रहने तक प्रभावी नहीं होती है और इसको निष्पादनकर्ता के जीवनकाल के दौरान लागू नहीं किया जा सकता है । अतः किसी विल को साबित करने के लिए निष्पादनकर्ता को समन करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है । कोई व्यक्ति जो किसी विल का अवलंब लेता है, उसे निश्चित रूप से अधिनियम की धारा 68 और 69 के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुपालन करना होगा, यदि वह ऐसी विल के अधीन फायदों की अपेक्षा करता है । विचारण न्यायालय और निचला अपील न्यायालय इस तथ्य से अधिक प्रभावित हुआ है कि प्रदर्श बी-3, 30 वर्ष से अधिक पुरानी है और इसलिए अधिनियम की धारा 90 के अधीन उपबंधित उपधारणा लागू होती है, तथापि, उपबंधित उपधारणा का परिसीमित क्षेत्र है । जहां कोई व्यक्ति ऐसे किसी दस्तावेज का अवलंब लेता है जो 30 वर्ष से अधिक पुराना है और उसके बारे में दूसरे पक्षकार द्वारा इनकार किया गया है तो उसकी अन्तर्वस्तु को और ऐसे संबंधित दस्तावेज की अन्य विशिष्टियों को साबित करना आवश्यक हो जाता है जिसके संबंध में ऐसी उपधारणा उपबंधित नहीं की गई है । दस्तावेज की ऐसी अन्तर्वस्तु को साबित करने पर ही वह प्रवर्तनीय बनता है । प्रतिवादी द्वारा प्रदर्श बी-3 के बारे में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है । अधिनियम की धारा 90 किसी ऐसे व्यक्ति को ऐसी बाध्यता से पूर्णतया मुक्त नहीं करती जिसने दस्तावेज 30 वर्ष से अधिक पुराने दस्तावेज का अवलंब लिया है और ऐसे व्यक्ति को इसे साबित करने के लिए

कार्रवाई करनी चाहिए । कभी-भी इस बारे में अभिवाक् किया जाता है कि दस्तावेज का पुराना होना विवाद्यक हो सकता है । यदि दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत है तो इसके पुराना होने या नया होने के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता और इसलिए अधिनियम की धारा 90 के अधीन फायदा प्रदान करने के लिए कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती, जब एक बार दस्तावेज की विद्यमानता 30 वर्ष से अधिक पहले की साबित हो । जहां किसी दस्तावेज का निष्पादन के विरोध में पूर्ण रूप में विवादित किया जाता है वहां कम से कम उस तथ्य को न्यायालय के समाधान के लिए 30 वर्ष से अधिक पुराना होना साबित किया जाना चाहिए । इसके पश्चात् ही निष्पादन अनुप्रमाणन या अन्य पहलुओं के संबंध में उपबंधित उपधारणा का निष्कर्ष निकाला जा सकता है । यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रदर्श बी-3 एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं है और यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि वादी द्वारा इस पर कार्रवाई की गई है । इसके प्रतिकूल साक्ष्य यह है कि वादी और प्रतिवादी संयुक्त रूप से संपत्ति का उपयोग कर रही है । प्रदर्श ए-5 और प्रदर्श ए-6 द्वारा वर्ष 2007 और वर्ष 2008 की पक्की रसीदें हैं जो वादी को जारी की गई हैं और प्रदर्श ए-7 वह पासबुक है जो यह उपदर्शित करती है कि उसने वादान्तर्गत संपत्ति में अपने भाग पर कृषि ऋण लिया था । प्रतिवादी ने पट्टादार पासबुक भी प्राप्त की है । अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने प्रदर्श बी-3 को साबित कर दिया है जैसा कि विधि द्वारा अपेक्षित है । प्रतिवादी द्वारा परीक्षा किए गए डी. डब्ल्यू. 2 के बारे में यह कहा गया है कि वह प्रदर्श बी-5 का अर्थात् दान-विलेख प्रदर्श बी-4 के संबंध में परिशोधन विलेख का अनुप्रमाणन साक्षी है । जहां प्रदर्श बी-3 और प्रदर्श बी-4 के अनुप्रमाणनकर्ताओं की परीक्षा नहीं की गई है वहां किसी भी प्रकार से प्रतिवादी स्वर्गीय पकीराम्मा द्वारा छोड़ी गई संपत्ति के विभाजन की मांग नहीं कर सकती है । (पैरा 8, 9, 11, 14, 15, 16, 17, 19, 20, 21 और 22)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[1995] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 455 :
श्रीमती मीरा भारजा बनाम **श्रीमती निर्मला कुमारी ;** 23

[1969] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 1147 : **एम. एल. अब्दुल जब्बार साहिब** बनाम **एच. वेंकट शास्त्री और पुत्र और अन्य** । 13

पुनरीक्षणीय (सिविल) अधिकारिता : 2014 का पुनर्विलोकन एस. ए. एम. पी. सं. 639.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 20 नियम 18 के अधीन सिविल पुनर्विलोकन आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री एम. पिच्चय्या

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एन. सुब्बाराव

न्यायमूर्ति एल. नरसिह्मा रेड्डी – यह आवेदन तारीख 29 अक्तूबर, 2011 के उस निर्णय का पुनर्विलोकन करने का अनुरोध करते हुए फाइल किया गया है जो इस न्यायालय द्वारा 2010 के एस. ए. सं. 1255 में पारित किया गया था । द्वितीय अपील 2005 के मूल वाद सं. 486 में दिए गए निर्णय से उद्भूत हुई थी जो हमारे समक्ष के आवेदक द्वारा फाइल की गई थी ।

2. सुविधा की दृष्टि से पक्षकारों का उस रूप में निर्देश किया जा रहा है जिस प्रकार वे वाद में पक्षकार बनाए गए थे । इस आवेदन को फाइल करने से संबंधित तथ्य इस प्रकार हैं ।

3. श्रीमती पकीराम्मा की दो पुत्रियां थीं जिनके नाम अदम्मा और द्रोपदम्मा हैं । वादी, अदम्मा की पुत्री है और प्रतिवादी द्रोपदम्मा की पुत्री है । पकीराम्मा की बहुत पहले तारीख 27 जून, 1956 को मृत्यु हो गई थी । वादी ने वाद में दी गई संपत्ति डी. सं. 192/ए जो मूलतया पकीराम्मा की थी और जिसका माप एक एकड़ भूमि है और जो गोरलावारीपलेम गांव, पेडापकाला मंडल जिला गुंटूर में स्थित है, के विभाजन के लिए द्वितीय अपर कनिष्ठ सिविल न्यायाधीश, गुंटूर के न्यायालय में 2005 का मूल वाद सं. 486 फाइल किया था । उसने यह अभिवाक् किया कि पकीराम्मा की मृत्यु के पश्चात् संपत्ति उसकी पुत्रियों अदम्मा और द्रोपदम्मा को समान रूप से न्यागत हो गई और वादी और प्रतिवादी इन दोनों स्त्रियों के बच्चे होने के नाते समान अंशों के हकदार हैं ।

4. प्रतिवादी ने लिखित कथन फाइल करके वाद का विरोध किया। उसने वादी द्वारा बताई गई नातेदारी को विवादित नहीं किया। उसके अनुसार पकीराम्मा ने द्रोपदम्मा के हक में तारीख 18 फरवरी, 1956 को एक विल निष्पादित की थी और द्रोपदम्मा ने तारीख 4 सितंबर, 1985 को उसके हक में एक दान-पत्र का निष्पादन किया था।

5. विचारण न्यायालय ने तारीख 27 फरवरी, 2009 के अपने निर्णय द्वारा वाद खारिज कर दिया। इससे व्यथित होकर वादी ने तृतीय अपर जिला न्यायाधीश, गुंटूर के न्यायालय में 2009 की ए. एस. सं. 229 के रूप में अपील फाइल की और यह अपील भी तारीख 11 मार्च, 2010 को खारिज कर दी गई थी। वादी ने इस न्यायालय में 2010 की द्वितीय अपील सं. 1255 फाइल की थी जो तारीख 29 अक्तूबर, 2011 को खारिज कर दी गई थी।

6. वादी के विद्वान् काउंसेल श्री एम. पिच्चय्या ने यह दलील दी कि विचारण न्यायालय, निचले अपील न्यायालय और इस न्यायालय ने इस महत्वपूर्ण विधिक पहलू पर विचार नहीं किया कि क्या कोई विल साबित की जा सकती है जब तक कि इसके अनुप्रमाणनकर्ता की परीक्षा न की जाए जैसा कि भारतीय साक्ष्य अधिनियम (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 68 और 69 के अधीन उपबंधित है। उन्होंने यह दलील दी कि जब एक बार नातेदारी विवादित न की गई हो और प्रतिवादी की एकमात्र प्रतिरक्षा प्रदर्श बी-3 विल है तो वाद तभी खारिज किया जा सकता है जब प्रदर्श बी-3 विधि के अनुसार साबित न की गई हो। उन्होंने यह दलील दी कि न तो अनुप्रमाणनकर्ता की परीक्षा की गई और न ही उस व्यक्ति की परीक्षा की गई जो अनुप्रमाणनकर्ता के लेख या हस्ताक्षर को पहचानता है जो विचारण न्यायालय के समक्ष परिसाक्ष्य देता। विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अन्य दस्तावेजों के सदृश दस्तावेज का जिनका विधि में प्रमाणित किया जाना अपेक्षित है, तभी अवलंब लिया जा सकता है जब अनुप्रमाणनकर्ताओं की परीक्षा की गई हो और ऐसे अनुप्रमाणनकर्ताओं की परीक्षा करने में विफल रहने पर वस्तुतः इस तरह के दस्तावेज का प्रवर्तन व्यर्थ हो जाएगा। उन्होंने यह दलील दी कि चूंकि विभिन्न स्तरों पर किए जाने वाले न्यायनिर्णयों में विधि की गंभीर त्रुटि हुई है, इसलिए इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश पुनर्विलोकित किए जाने योग्य है।

7. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल श्री एन. सुब्बाराव ने यह दलील दी कि पुनर्विलोकन किसी भी प्रकार से स्वीकार किए जाने योग्य नहीं हैं और सभी व्यावहारिक प्रयोजनों के लिए वादी ने लगभग अतिरिक्त अपील के रूप में वर्तमान पुनर्विलोकन आवेदन प्रस्तुत किया है । उन्होंने यह दलील दी कि प्रदर्श बी-3, 50 साल से भी अधिक पूर्व निष्पादित की गई थी और कोई भी अनुप्रमाणनकर्ता जीवित नहीं है । उन्होंने यह दलील दी कि विचारण न्यायालय और निचला अपील न्यायालय इस बात से सहमत था कि प्रदर्श बी-3 न्यायालय के समाधान में साबित कर दी गई है और इस न्यायालय ने द्वितीय अपील इस निष्कर्ष के आधार पर खारिज की थी कि विधि का कोई सारभूत प्रश्न विचारार्थ उत्पन्न नहीं हुआ है । उन्होंने यह दलील दी कि पुनर्विलोकन आवेदन में कोई बल नहीं है और इसलिए यह खारिज किए जाने योग्य है ।

8. यह न्यायालय इस तथ्य के प्रति सजग है कि पुनर्विलोकन अतिरिक्त अपील के सदृश नहीं हो सकता और इसे केवल विधि में परिसीमित और विनिर्दिष्ट आधारों पर मान्यता दी जा सकती है और तभी पुनर्विलोकन को ग्रहण किया जा सकता है । तथ्यतः जहां एक जैसे तथ्यों के आधार पर दो मत संभव हों, वहां पुनर्विलोकन को ग्रहण करने के लिए कोई न्यायोचित्य नहीं हो सकता । ऐसा केवल वहां है जहां कोई महत्वपूर्ण तथ्य न्यायालय के ध्यान से छूट गया हो या न्यायालय द्वारा अभिव्यक्त मत विधि के विनिर्दिष्ट उपबंध के प्रतिकूल हो या ऐसा कोई आबद्धकर पूर्व निर्णय हो, केवल वहां पुनर्विलोकन को ग्रहण किया जा सकता है ।

9. वर्तमान मामले में तथ्य पूर्ण रूप से विवादित नहीं हैं । वादी और प्रतिवादी दोनों ही समान पूर्व उत्तराधिकारी पकीराम्मा की दोनों पुत्रियों के बच्चे हैं । यदि प्राकृतिक उत्तराधिकार को अनुज्ञात किया जाए तो पकीराम्मा द्वारा धारित संपत्ति वादी और प्रतिवादी के बीच समान रूप से विभाजित की जानी चाहिए । तथापि, प्रतिवादी ने यह अभिवाक् किया है कि पकीराम्मा ने प्रतिवादी की माता के हक में वादान्तर्गत सम्पूर्ण संपत्ति की वसीयत करते हुए द्रोपदम्मा के हक में प्रदर्श बी-3 निष्पादित की थी । इस तथ्य से कि द्रोपदम्मा ने प्रतिवादी के हक में एक दान-विलेख निष्पादित किया था, अधिक अंतर नहीं पड़ता क्योंकि उत्तराधिकार के द्वारा भी प्रतिवादी को अंश मिलेगा, निस्संदेह किसी अन्य विधिक उत्तराधिकार के दावे के अध्यधीन ।

10. इस न्यायालय के समक्ष दलील दिया गया एकमात्र मुद्दा यह है कि विल प्रदर्श बी-3 जिसके बारे में यह कहा गया है कि वह पकीराम्मा द्वारा निष्पादित की गई है, विधि के अधीन यथाअपेक्षित रूप में साबित नहीं की गई थी । अतः इस बात पर विचार किया जाना आवश्यक है कि क्या प्रतिवादी द्वारा विधि की किसी विनिर्दिष्ट अपेक्षा का अनुपालन नहीं किया गया था ।

11. अनुप्रमाणन एक प्रक्रिया है जो विधि द्वारा विहित है और जो दस्तावेजों के विशिष्ट प्रवर्ग के विधिमान्य निष्पादन के लिए विहित है । किसी व्यक्ति द्वारा निष्पादित कोई दस्तावेज इसके निष्पादनकर्ता की परीक्षा करके साबित किया जा सकता है और यदि आवश्यक हो तो उन व्यक्तियों की परीक्षा करके साबित किया जा सकता है जो इसके निष्पादन के साक्षी हैं । वर्तमान मामले में निष्पादनकर्ता के हस्ताक्षरों का सुबूत इस प्रयोजन को पूरा कर सकता है । तथापि, अनुप्रमाणन एक पूर्णतया भिन्न बात है । यह केवल ऐसे दस्तावेजों के कतिपय प्रवर्ग के बारे में है, यथा अधिनियम की धारा 66 के अधीन विल, संपत्ति अंतरण अधिनियम के अधीन दान-विलेख और बंधक विलेख का अनुप्रमाणन आवश्यक है ।

12. अनुप्रमाणन शब्द को स्पष्ट किया गया है, यद्यपि इसे संपत्ति अंतरण अधिनियम की धारा 3 के अधीन स्वतंत्र रूप से परिभाषित नहीं किया गया है । यह इस प्रकार है :–

> "किसी लिखत के संबंध में 'अनुप्रमाणित' से ऐसे दो या अधिक साक्षियों द्वारा अनुप्रमाणित अभिप्रेत है और सर्वदा अभिप्रेत रहा होना समझा जाएगा जिनमें से हर एक ने निष्पादक को लिखत पर हस्ताक्षर करते या अपना चिह्न लगाते देखा है या निष्पादक की उपस्थिति में और उसके निदेश द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को लिखत पर हस्ताक्षर करते देखा है, या अभिस्वीकृति पाई है और जिनमें से हर एक ने निष्पादक की उपस्थिति में लिखत पर हस्ताक्षर किए हैं, किन्तु यह आवश्यक न होगा कि ऐसे साक्षियों में से एक से अधिक एक ही समय उपस्थित रहे हों और अनुप्रमाणन का कोई विशिष्ट प्ररूप आवश्यक न होगा ।"

13. चूंकि अनुप्रमाणन शब्द इसकी परिभाषा में ही दिया गया है इसलिए यह विवरण या प्रक्रिया के स्पष्टीकरण के रूप में है और इस पद

की ठीक परिभाषा है । इसका तात्पर्य समझना कठिन नहीं है । माननीय उच्चतम न्यायालय और विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा उपबंध का निर्वचन किया गया है । उदाहरण के लिए **एम. एल. अब्दुल जब्बार साहिब** बनाम **एच. वेंकट शास्त्री और पुत्र और अन्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि यह उल्लेखनीय है कि अनुप्रमाणन शब्द किसी चीज को परिभाषित करता है जो इसकी परिभाषा के भाग के रूप में उत्पन्न होता है । अनुप्रमाणन के लिए किसी तथ्य के साक्षी को पेश करना होता है । संक्षेप में कहा जाए तो धारा 3 के अधीन विधिमान्य अनुप्रमाणन की आवश्यक शर्तें इस प्रकार हैं – (i) दो या अधिक साक्षियों ने लिखत पर हस्ताक्षर करने वाले निष्पादनकर्ता को देखा है या उसके हस्ताक्षरों की वैयक्तिक स्वीकृति के बारे में उससे सूचना प्राप्त की है ; (ii) इस तथ्य के साक्ष्य या अनुप्रमाणन की दृष्टि से उनमें से प्रत्येक ने निष्पादनकर्ता की उपस्थिति में लिखत पर हस्ताक्षर किए हैं । यह आवश्यक है कि साक्षी ने अपनी इच्छा से अपने हस्ताक्षर किए हों अर्थात् अनुप्रमाणन करने के प्रयोजन के लिए उसने हस्ताक्षर करने वाले निष्पादनकर्ता को देखा है या उसके हस्ताक्षर की वैयक्तिक स्वीकृति के बारे में उससे सूचना प्राप्त की है । यदि कोई व्यक्ति दस्तावेज पर अपने हस्ताक्षर किसी अन्य प्रयोजन के लिए करता है अर्थात् यह प्रमाणित करने के लिए करता है कि वह उसका लेखक है या पहचानकर्ता है या रजिस्ट्रीकरण करने वाला अधिकारी है तो वह एक अनुप्रमाणन करने वाला साक्षी नहीं है ।

14. इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता कि अनुप्रमाणन एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा विधि यह सुनिश्चित करती है कि किसी दस्तावेज की संभाव्यता अस्तित्व में लाने के लिए कपटपूर्ण साधनों को बहिष्कृत किया जाए । स्पष्टतया उन परिणामों की विधिक प्रकृति को जो ऐसे दस्तावेजों से निकले हैं जिनका अनुप्रमाणन आवश्यक है ध्यान में रखते हुए अधिनियम इसको साबित करने के लिए पूर्णतया भिन्न प्रक्रिया विहित करता है । इस संबंध में अधिनियम की धारा 68 और 69 में प्रक्रिया विहित की गई है । ये धाराएं इस प्रकार हैं :–

"धारा 68. **ऐसी दस्तावेज के निष्पादन का साबित किया जाना जिसका अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है** – यदि किसी

---

[1] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 1147.

दस्तावेज का अनुप्रमाणित होना विधि द्वारा अपेक्षित है, तो उसे साक्ष्य के रूप में उपयोग में न लाया जाएगा, जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी, यदि कोई अनुप्रमाणक साक्षी जीवित और न्यायालय की आदेशिका के अध्यधीन हो तथा साक्ष्य देने के योग्य हो, उसका निष्पादन साबित करने के प्रयोजन से न बुलाया गया हो ।

धारा 69. **जब किसी भी अनुप्रमाणक साक्षी का पता न चले, तब सुबूत** – यदि ऐसे किसी अनुप्रमाणक साक्षी का पता न चल सके अथवा यदि दस्तावेज का यूनाइटेड किंगडम में निष्पादित होना तात्पर्यित हो तो यह साबित करना होगा कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी का अनुप्रमाणन उसी के हस्तलेख में है, तथा यह कि दस्तावेज का निष्पादन करने वाले व्यक्ति का हस्ताक्षर उसी व्यक्ति के हस्तलेख में है ।"

15. अधिनियम की धारा 68 का आरंभिक वाक्य यह उपबंधित करता है कि यदि किसी दस्तावेज का अनुप्रमाणन किया जाना विधि द्वारा अपेक्षित है तो उसे तब तक साक्ष्य के रूप में उपयोग में नहीं लाया जाएगा जब तक कि कम से कम एक अनुप्रमाणक साक्षी उसके निष्पादन के लिए न बुलाया गया हो । अधिनियम की धारा 69 अनुसरण की जाने वाली उस प्रक्रिया को विहित करती है जहां अनुप्रमाणन साक्षी उपलब्ध न हो सकें । जब तक कि ऐसा व्यक्ति जो किसी ऐसे दस्तावेज का अवलंब लेता है जिसको विधितः प्रमाणित किए जाने की आवश्यकता है, अधिनियम की धारा 68 और 69 के अधीन अनुध्यात उपायों का प्रयोग नहीं करता है, वह उसका साक्ष्य के रूप में उपयोग नहीं कर सकता ।

16. उन दस्तावेजों के प्रवर्ग में भी जिनकी विधितः अनुप्रमाणन की आवश्यकता है, विल का प्रमाणन भिन्न आधार पर होता है । दस्तावेजों के अन्य सभी प्रवर्गों में इस बात की पूरी संभावना होती है कि दस्तावेज का निष्पादनकर्ता जीवित है । यदि कोई पक्षकार ऐसे किसी दस्तावेज का जो निष्पादनकर्ता से दस्तावेज के निष्पादन के संबंध में अधिनियम की धारा 68 के निबंधनों में स्वीकृति प्राप्त करना चाहता है, अधिनियम की धारा 68 को दृष्टिगत करते हुए सारभूत सीमा तक भार कम हो जाएगा ।

17. तथापि, ऐसी संभावना किसी विल के संबंध में विद्यमान नहीं होती है । इसका कारण यह है कि कोई विल अपने निष्पादनकर्ता के

जीवित रहने तक प्रभावी नहीं होती है और इसको निष्पादनकर्ता के जीवनकाल के दौरान लागू नहीं किया जा सकता है । अतः किसी विल को साबित करने के लिए निष्पादनकर्ता को समन करने का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता है । कोई व्यक्ति जो किसी विल का अवलंब लेता है, उसे निश्चित रूप से अधिनियम की धारा 68 और 69 के अधीन विहित प्रक्रिया का अनुपालन करना होगा, यदि वह ऐसी विल के अधीन फायदों की अपेक्षा करता है ।

18. जहां तक वर्तमान मामले के तथ्यों का संबंध है, प्रतिवादी ने विल प्रदर्श बी-3 का अवलंब लिया है जिसके बारे में यह कहा गया है कि वह पकीराम्मा द्वारा द्रोपदम्मा के हक में निष्पादित की गई है और प्रदर्श बी-4 वह दान-पत्र है जिसके बारे में यह कहा गया है कि यह द्रोपदम्मा द्वारा प्रतिवादी के हक में निष्पादित किया गया है । दोनों ही दस्तावेजों के अनुप्रमाणन की आवश्यकता है । तथापि, उसने ऐसे किसी व्यक्ति की परीक्षा नहीं की है जिसे प्रदर्श बी-3 के अनुप्रमाणनकर्ता के रूप में अंकित किया गया है । यह उपधारित करते हुए कि ऐसे व्यक्ति जिन्हें प्रदर्श बी-3 में अनुप्रमाणनकर्ता के रूप में अंकित किया गया है, जीवित नहीं हैं तो भी प्रतिवादी अधिनियम की धारा 69 का अनुपालन करने की बाध्यता के अधीन थी, जबकि ऐसा नहीं किया गया ।

19. विचारण न्यायालय और निचला अपील न्यायालय इस तथ्य से अधिक प्रभावित हुआ है कि प्रदर्श बी-3, 30 वर्ष से अधिक पुरानी है और इसलिए अधिनियम की धारा 90 के अधीन उपबंधित उपधारणा लागू होती है । तथापि, उपबंधित उपधारणा का परिसीमित क्षेत्र है । जहां कोई व्यक्ति ऐसे किसी दस्तावेज का अवलंब लेता है जो 30 वर्ष से अधिक पुराना है और उसके बारे में दूसरे पक्षकार द्वारा इनकार किया गया है तो उसकी अन्तर्वस्तु को और ऐसे संबंधित दस्तावेज की अन्य विशिष्टियों को साबित करना आवश्यक हो जाता है जिसके संबंध में ऐसी उपधारणा उपबंधित नहीं की गई है । दस्तावेज की ऐसी अन्तर्वस्तु को साबित करने पर ही वह प्रवर्तनीय बनता है । प्रतिवादी द्वारा प्रदर्श बी-3 के बारे में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया गया है ।

20. अधिनियम की धारा 90 किसी ऐसे व्यक्ति को ऐसी बाध्यता से पूर्णतया मुक्त नहीं करती जिसने दस्तावेज 30 वर्ष से अधिक पुराने

दस्तावेज का अवलंब लिया है और ऐसे व्यक्ति को इसे साबित करने के लिए कार्रवाई करनी चाहिए । कभी भी इस बारे में अभिवाक् किया जाता है कि दस्तावेज का पुराना होना विवाद्यक हो सकता है । यदि दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत है तो इसके पुराना होने या नया होने के बारे में कोई विवाद नहीं किया जा सकता और इसलिए अधिनियम की धारा 90 के अधीन फायदा प्रदान करने के लिए कोई समस्या उत्पन्न नहीं होती, जब एक बार दस्तावेज की विद्यमानता 30 वर्ष से अधिक पहले की साबित हो । जहां किसी दस्तावेज का निष्पादन के विरोध में पूर्ण रूप में विवादित किया जाता है वहां कम से कम उस तथ्य को न्यायालय के समाधान के लिए 30 वर्ष से अधिक पुराना होना साबित किया जाना चाहिए । इसके पश्चात् ही निष्पादन अनुप्रमाणन या अन्य पहलुओं के संबंध में उपबंधित उपधारणा का निष्कर्ष निकाला जा सकता है ।

21. यहां यह उल्लेखनीय है कि प्रदर्श बी-3 एक रजिस्ट्रीकृत दस्तावेज नहीं है और यह उपदर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं दिया गया है कि वादी द्वारा इस पर कार्रवाई की गई है । इसके प्रतिकूल साक्ष्य यह है कि वादी और प्रतिवादी संयुक्त रूप से संपत्ति का उपयोग कर रही है । प्रदर्श ए-5 और प्रदर्श ए-6 द्वारा वर्ष 2007 और वर्ष 2008 की पक्की रसीदें हैं जो वादी को जारी की गई हैं और प्रदर्श ए-7 वह पासबुक है जो यह उपदर्शित करती है कि उसने वादान्तर्गत संपत्ति में अपने भाग पर कृषि ऋण लिया था । प्रतिवादी ने पट्टादार पासबुक भी प्राप्त की है । अतः यह नहीं कहा जा सकता है कि प्रतिवादी ने प्रदर्श बी-3 को साबित कर दिया है जैसा कि विधि द्वारा अपेक्षित है ।

22. प्रतिवादी द्वारा परीक्षा किए गए डी. डब्ल्यू. 2 के बारे में यह कहा गया है कि वह प्रदर्श बी-5 का अर्थात् दान-विलेख प्रदर्श बी-4 के संबंध में परिशोधन विलेख का अनुप्रमाणन साक्षी है । जहां प्रदर्श बी-3 और प्रदर्श बी-4 के अनुप्रमाणनकर्ताओं की परीक्षा नहीं की गई है वहां किसी भी प्रकार से प्रतिवादी स्वर्गीय पकीराम्मा द्वारा छोड़ी गई संपत्ति के विभाजन की मांग नहीं कर सकती ।

23. प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने उच्चतम न्यायालय द्वारा विनिश्चित **श्रीमती मीरा भारजा** बनाम **श्रीमती निर्मला कुमारी**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अपनी इस दलील के समर्थन में अवलंब लिया है कि पुनर्विलोकन केवल वहां मान्य है जहां अभिलेख पर प्रथमदृष्ट्या त्रुटि हो, न कि निर्णय में त्रुटि उपदर्शित की गई हो । इस न्यायालय ने द्वितीय अपील खारिज करते हुए अधिनियम की धारा 68, 69 और 90 के उद्देश्य पर और प्राधिकृत नज़ीरों पर विचार नहीं किया जिनमें उक्त उपबंध का निर्वचन किया गया है । इस न्यायालय का यह मत है कि इस न्यायालय द्वारा 2010 की द्वितीय अपील सं. 1255 में तारीख 29 अक्तूबर, 2011 के दिए गए निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए विधिमान्य मामला बनता है ।

24. तद्नुसार 2010 का पुनर्विलोकन एस. ए. एम. पी. क्रम संख्या 4260 मंजूर किया जाता है और तारीख 29 अक्तूबर, 2011 के निर्णय का पुनर्विलोकन किया जाता है ।

25. पूर्ववर्ती पैरों में उल्लिखित तर्कों को दृष्टिगत करते हुए द्वितीय अपील मंजूर की जाती है और अपर जिला न्यायाधीश, गुंटूर द्वारा 2009 के एस. ए. सं. 229 में पारित निर्णय और डिक्री तथा द्वितीय कनिष्ठ अपर सिविल न्यायाधीश, गुंटूर द्वारा 2005 के मूल वाद सं. 486 में पारित निर्णय और डिक्री अपास्त की जाती है । यह निदेश देते हुए वाद में प्रारंभिक डिक्री पारित की जाती है कि वादान्तर्गत संपत्ति दो समान भागों में विभाजित की जाएगी और उनमें से एक भाग वादी को आबंटित किया जाएगा और दूसरा भाग प्रतिवादी को आबंटित किया जाएगा । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

पुनर्विलोकन आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 1995 एस. सी. 455.

टी. जय सिंह

बनाम

प्यारो कौर (श्रीमती) और अन्य

तारीख, 27 जून, 2014

न्यायमूर्ति एल. नरसिह्मा रेड्डी

स्टाम्प अधिनियम, 1899 (1899 का 2) – धारा 35 [सपठित रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 (1908 का 16)] – धारा 77 – विक्रय-विलेख का प्रारूप – विक्रेताओं द्वारा प्रारूप पर हस्ताक्षर करने के पश्चात् विलेख का निष्पादन करने से इनकार – विनिर्दिष्ट अनुपालन के लिए वाद – कार्यालय द्वारा स्टाम्प दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत न होने के कारण साक्ष्य में स्वीकार करने के संबंध में आक्षेप – विधिमान्यता – रजिस्ट्रीकरण का प्रश्न निष्पादन के पश्चात् ही उत्पन्न होना – ऐसे दस्तावेज को साक्ष्य में स्वीकार किया जा सकता है ।

आवेदक ने द्वितीय अपर मुख्य न्यायाधीश, सिटी सिविल न्यायालय, हैदराबाद के न्यायालय में विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष के लिए 2006 का मूल वाद सं. 305 फाइल किया था जिसमें उन्होंने प्रत्यर्थियों को विक्रय-विलेख को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए निदेश देने और अनुकल्पतः स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए निदेश देने अथवा संपत्ति के कब्जे का परिदान करने के लिए निदेश देने का अनुरोध किया । विक्रय-विलेख का प्रारूप वाद के साथ संलग्न दस्तावेजों में से एक के रूप में फाइल किया गया । पुनरीक्षण आवेदन मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – जंगम संपत्तियों के अंतरण से संबंधित संव्यवहार में विक्रय के करारों के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष का दावा किया जाता है यदि करार में कब्जे के परिदान के बारे में उल्लेख किया गया हो तो उसका रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक है । इसके प्रतिकूल यदि ऐसा कोई उल्लेख नहीं है तो उसे समुचित स्टाम्प शुल्क का संदाय सुनिश्चित करके साक्ष्य में प्राप्त किया जा सकता है । वहां भी जहां अन्यथा किसी दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है किन्तु उसे रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 का अवलंब लिया जा सकता है बशर्ते कि इसे आनुषंगिक प्रयोजनों के लिए फाइल किया गया

हो । यदि किसी विक्रय-विलेख के आधार पर कोई अनुतोष मांगा जाता है, जिसका पहले ही निष्पादन हो चुका है तो पक्षकार से स्टाम्प शुल्क की कमी या शास्ति का संदाय करने की अपेक्षा करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । वर्तमान मामले में आवेदक द्वारा अवलंब लिया गया दस्तावेज न तो विक्रय का एक करार है और न ही विक्रय-विलेख है । यह एक ऐसा प्रारूपित विक्रय-विलेख है जिस पर कतिपय विक्रेताओं ने हस्ताक्षर किए हैं । इस बात का कि आवेदक किस सीमा तक अधिकारों का दावा कर सकता है, वाद में विनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है । निस्संदेह दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किए जाने योग्य है, तथापि, यह निष्पादित नहीं किया गया है । केवल दस्तावेज के निष्पादन पर ही । दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता उत्पन्न होगी । प्रारंभिक रूप में दस्तावेज अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण किए जाने योग्य नहीं कहा जा सकता । किसी भी प्रकार से चूंकि दस्तावेज के अधीन सीधे अधिकारों का दावा किया गया है इसलिए प्रयोजन आनुषंगिक नहीं माना जा सकता । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 77 लागू नहीं होती क्योंकि यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां रजिस्ट्रार ने दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण करने से इंकार किया हो, यद्यपि इसका विक्रेताओं द्वारा निष्पादन किया गया है और रजिस्ट्रीकरण के लिए पेश किया गया है । उपबंध के अधीन प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि ऐसा कोई दस्तावेज जिसका निष्पादन अनुचित या कम स्टाम्प के साथ किया गया हो, साक्ष्य में प्राप्त नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त कोई भी यह बात ध्यान में रख सकता है कि इस तथ्यात्मक प्रश्न के बारे में कि क्या दस्तावेज समुचित स्टाम्प पत्र पर निष्पादित किया गया था या नहीं, सत्यापन किया जा सकता है यदि केवल इसके भाग का निष्पादन पहले ही कर लिया गया है । यदि दस्तावेज में किए गए उल्लेख को विचार में लाए बिना अभी भी दस्तावेज का निष्पादन किया जाना है तो किसी स्टाम्प शुल्क की कमी के उद्ग्रहण का अथवा शास्ति का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । सही परीक्षा यह होगी कि क्या स्टाम्प शुल्क की कमी के संदाय पर दस्तावेज, किसी दस्तावेज के विवरण में स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची I-ए में सुसंगत प्रविष्टि के अधीन उपयुक्त हो सकता है । किसी प्रारूपित विक्रय-विलेख का अनुसूची I-ए में कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है । इसलिए इस प्रक्रम पर स्टाम्प शुल्क या शास्ति के अध्यधीन होना स्टाम्प शुल्क की परिधि के बाहर की कार्रवाई है । ऐसा नहीं है मानो आवेदक को स्टाम्प शुल्क और रजिस्ट्रीकरण प्रभारों के अध्यधीन लाए बिना अनुतोष दे

दिया जाए । यदि वाद डिक्री होता है तो दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम पर स्टाम्प शुल्क और रजिस्ट्रीकरण प्रभार संदत्त किए जाएंगे । इसके प्रतिकूल यदि प्रत्यर्थी या उनमें से कोई वाद का विरोध करने में सफल होता है तो आवेदक को न केवल प्रतिफल का नुकसान होगा जो उसने दस्तावेज के अधीन संदत्त करना बताया है अपितु लगभग उसे 60 लाख रुपए का पारिणामिक नुकसान भी होगा जिसे स्टाम्प शुल्क की कमी और रजिस्ट्रीकरण प्रभारों के संबंध में संदत्त किए जाने के लिए कहा गया है । यदि वाद डिक्री भी होता है तो भार बना रहता है और सहने योग्य नहीं है । अधिनियम के अधीन कभी भी ऐसा आशय नहीं हो सकता । अतः सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है और पुनरीक्षण के अधीन आदेश को अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह दस्तावेज को साक्ष्य में ग्रहण करे और स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रीकरण प्रभारों के प्रश्न को जो परिणाम पर निर्भर है और जो वाद में प्राप्त हो सकता है, छोड़ दे । (पैरा 8, 10, 11, 12 और 13)

अपीली (पुनरीक्षणीय) अधिकारिता : 2011 का सिविल पुनरीक्षण आवेदन सं. 633.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 115 के अधीन सिविल पुनरीक्षण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री एच. श्रीनिवास राव

प्रत्यर्थियों की ओर से श्रीमती मंजरी एस. गनू

न्यायमूर्ति एल. नरसिह्मा रेड्डी – इस पुनरीक्षण में कतिपय आधारभूत प्रश्न उठाए गए हैं जो भारतीय स्टाम्प अधिनियम और रजिस्ट्रीकरण अधिनियम से संबंधित हैं ।

2. यह कहा गया है कि प्रत्यर्थी सं. 1 से 6 हैदराबाद के परिसर सं. 9-1-34/10, लूंगेर हाउस जिसका माप 642 वर्ग गज है, के संयुक्त स्वामी हैं । यह कहा गया है कि उन्होंने 10,00,000/- रुपए का सम्पूर्ण प्रतिफल प्राप्त करते हुए आवेदक के हक में संपत्ति विक्रीत करने की सहमति दी है और उनके अनुदेशानुसार मार्च, 2006 में एक विक्रय-विलेख तैयार किया गया था । यह कहा गया है कि वास्तविक स्टाम्प शुल्क के निर्धारण के लिए विक्रय-विलेख तैयार किया गया था । यह कहा गया है कि वास्तविक स्टाम्प शुल्क के निर्धारण के लिए विक्रय-विलेख का प्रारूप लंबित था जो 100/- रुपए के स्टाम्प पत्रों पर तैयार किया गया है । प्रत्यर्थी सं. 1, 2, 4,

5 और 6 के बारे में यह कहा गया है कि उन्होंने विक्रय-विलेख के प्रारूप पर हस्ताक्षर किए हैं, तथापि, तृतीय प्रत्यर्थी द्वारा इस पर हस्ताक्षर न करने के कारण दस्तावेज रजिस्ट्रीकरण के लिए पेश नहीं किया जा सका और यह कहा गया है कि इस कारण से सभी प्रत्यर्थी मुकर गए हैं ।

3. आवेदक ने द्वितीय अपर मुख्य न्यायाधीश, सिटी सिविल न्यायालय, हैदराबाद के न्यायालय में विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष के लिए 2006 का मूल वाद सं. 305 फाइल किया था जिसमें उन्होंने प्रत्यर्थियों को विक्रय-विलेख को रजिस्ट्रीकृत करने के लिए निदेश देने और अनुकल्पतः स्थायी व्यादेश की डिक्री के लिए निदेश देने अथवा संपत्ति के कब्जे का परिदान करने के लिए निदेश देने का अनुरोध किया । विक्रय-विलेख का प्रारूप वाद के साथ संलग्न दस्तावेजों में से एक के रूप में फाइल किया गया है । विचारण न्यायालय के कार्यालय ने दस्तावेज प्राप्त करने और चिह्नित करने के संदर्भ में एक आक्षेप उठाया ।

4. आवेदक ने विक्रय-विलेख प्रारूप को प्रदर्श ए-4 के रूप में चिह्नांकित करने के अनुरोध के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के अधीन 2009 का अंतरिम आवेदन सं. 2390 फाइल किया । यह अभिवाक् किया गया था कि दस्तावेज को इसके वर्तमान रूप में तैयार करने तथा स्टाम्प शुल्क की कमी या रजिस्ट्रीकरण प्रभार या शास्ति का संदाय करने की किसी आवश्यकता के बिना दस्तावेज प्राप्त करने के लिए कोई आपत्ति नहीं उठायी जा सकती । यह भी अभिवाक् किया गया था कि वर्तमान मामले के तथ्यों को रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 लागू होगी न कि धारा 77 ।

5. प्रत्यर्थी सं. 8 ने उत्तर फाइल करके आवेदन का विरोध किया था । यह अभिवाक् किया गया था कि अंतरिम आवेदन स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के अधीन अपेक्षा को विफ़ल करने के लिए फाइल किया गया है । उसने यह भी अभिवाक् किया कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 77 वर्तमान मामले के तथ्यों को लागू नहीं होती । विचारण न्यायालय ने तारीख 30 सितंबर, 2009 के आदेश द्वारा अंतरिम आवेदन खारिज कर दिया । अतः यह पुनरीक्षण आवेदन फाइल किया गया है ।

6. आवेदक के विद्वान् काउंसेल श्री एच. श्रीनिवास राव ने यह दलील दी कि यह एक ऐसा तकनीकी मामला है जिसमें विक्रय-विलेख के प्रारूप पर सभी विक्रेताओं द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे और इसलिए स्टाम्प शुल्क

या शास्ति का संदाय करने का तभी अवसर उत्पन्न होगा जब सभी हस्ताक्षरकर्ता इस पर अपने हस्ताक्षर करें और यह रजिस्ट्रीकरण के लिए पेश किया जाए । यह दलील दी गई है कि दस्तावेज को कब्जे के साथ किसी करार के रूप में नहीं माना जा सकता क्योंकि यह स्पष्ट रूप से विक्रय-विलेख का प्रारूप है और इसलिए इसे विक्रय-विलेख के रूप में नहीं माना जा सकता क्योंकि इस पर अभी भी कतिपय पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए जाने शेष हैं । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि चूंकि संपत्ति के लिए प्रतिफल जैसा कि कुल विक्रय-विलेख के प्रारूप में उल्लिखित है, केवल 10 लाख रुपए है, इसलिए स्टाम्प शुल्क की कमी और शास्ति के संबंध में लगभग 60 लाख रुपए का संदाय करने के लिए आवेदक से अपेक्षा न केवल पूर्ण रूप से असाम्यापूर्ण और अन्यायपूर्ण है अपितु इससे बेतुकापन भी उत्पन्न होता है । उन्होंने यह दलील दी कि जहां आवेदक या न्यायालय ऐसे अनुतोष के बारे में जो वाद में मंजूर किया जा सके, सुनिश्चित नहीं है वहां ऐसी अत्यधिक धनराशि को संदत्त करने का प्रश्न कभी भी न्यायनिर्णयन प्रणाली के अनुपालन में नहीं कहा जा सकता ।

7. इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों के विद्वान् काउंसेल श्रीमती मंजरी एस. गनू ने यह दलील दी कि चूंकि आवेदक सट्टेबाजी के कारबार में लिप्त था और जब कि दस्तावेज पर अपेक्षित स्टाम्प शुल्क और शास्ति संदत्त नहीं कर दी जाती, दस्तावेज न्यायनिर्णयन की विषयवस्तु नहीं हो सकता ।

8. हमारे समक्ष के आवेदक तथा विचारण न्यायालय ने एक विशिष्ट स्थिति उत्पन्न की है । सामान्यतया जंगम संपत्तियों के अंतरण से संबंधित संव्यवहार में विक्रय के करारों के आधार पर विनिर्दिष्ट अनुपालन के अनुतोष का दावा किया जाता है यदि करार में कब्जे के परिदान के बारे में उल्लेख किया गया हो तो उसका रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक है । इसके प्रतिकूल यदि ऐसा कोई उल्लेख नहीं है तो उसे समुचित स्टाम्प शुल्क का संदाय सुनिश्चित करके साक्ष्य में प्राप्त किया जा सकता है । वहां भी जहां अन्यथा किसी दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण आवश्यक है किन्तु उसे रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया गया है, रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 का अवलंब लिया जा सकता है बशर्ते कि इसे आनुषंगिक प्रयोजनों के लिए फाइल किया गया हो । यदि किसी विक्रय-विलेख के आधार पर कोई अनुतोष मांगा जाता है, जिसका पहले ही निष्पादन हो चुका है तो पक्षकार से स्टाम्प शुल्क की कमी या शास्ति का संदाय करने की अपेक्षा करने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता । वर्तमान मामले में आवेदक द्वारा अवलंब लिया

गया दस्तावेज न तो विक्रय का एक करार है और न ही विक्रय-विलेख है । यह एक ऐसा प्रारूपित विक्रय-विलेख है जिस पर कतिपय विक्रेताओं ने हस्ताक्षर किए हैं । इस बात का कि आवेदक किस सीमा तक अधिकारों का दावा कर सकता है, वाद में विनिश्चित किए जाने की आवश्यकता है ।

9. वाद में तीन वैकल्पिक अनुतोष मांगे गए हैं अर्थात् :–,

(क) प्रत्यर्थियों को दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत कराने के लिए विनिर्दिष्ट अनुपालन के रूप में निदेश देने के लिए,

(ख) स्थायी व्यादेश के लिए, और

(ग) कब्जे के परिदान के लिए डिक्री का अनुरोध किया गया है, यह कहा गया है कि पक्षकारों के बीच संपत्ति के प्रतिफल के रूप में 10 लाख रुपए की सहमति हुई । दस्तावेज का निष्पादन तथा उसकी अन्तर्वस्तु सबूत की विषय-वस्तु है । यह स्पष्ट है कि आवेदक ने विभिन्न अनुतोषों के लिए दावा किया है ।

10. उपर्युक्त उल्लिखित पृष्ठभूमि में न तो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 49 लागू होती है और न ही धारा 77 । निस्संदेह दस्तावेज रजिस्ट्रीकृत किए जाने योग्य है, तथापि, यह निष्पादित नहीं किया गया है । केवल दस्तावेज के निष्पादन पर ही । दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता उत्पन्न होगी । प्रारंभिक रूप में दस्तावेज अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण किए जाने योग्य नहीं कहा जा सकता । किसी भी प्रकार से चूंकि दस्तावेज के अधीन सीधे अधिकारों का दावा किया गया है इसलिए प्रयोजन आनुषंगिक नहीं माना जा सकता । रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 77 लागू नहीं होती क्योंकि यह एक ऐसा मामला नहीं है जहां रजिस्ट्रार ने दस्तावेज का रजिस्ट्रीकरण करने से इंकार किया हो, यद्यपि इसका विक्रेताओं द्वारा निष्पादन किया गया है और रजिस्ट्रीकरण के लिए पेश किया गया है ।

11. अब हम स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 के प्रवर्तन के प्रश्न पर विचार करते हैं । उपबंध के अधीन प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि ऐसा कोई दस्तावेज जिसका निष्पादन अनुचित या कम स्टाम्प के साथ किया गया हो, साक्ष्य में प्राप्त नहीं किया गया है । इसके अतिरिक्त कोई भी यह बात ध्यान में रख सकता है कि इस तथ्यात्मक प्रश्न के बारे में कि क्या दस्तावेज समुचित स्टाम्प पत्र पर निष्पादित किया गया था या नहीं, सत्यापन किया जा सकता है यदि केवल इसके भाग का निष्पादन पहले ही

कर लिया गया है । यदि दस्तावेज में किए गए उल्लेख को विचार में लाए बिना अभी भी दस्तावेज का निष्पादन किया जाना है तो किसी स्टाम्प शुल्क की कमी के उद्ग्रहण का अथवा शास्ति का प्रश्न उत्पन्न नहीं होता । सही परीक्षा यह होगी कि क्या स्टाम्प शुल्क की कमी के संदाय पर दस्तावेज, किसी दस्तावेज के विवरण में स्टाम्प अधिनियम की अनुसूची I-ए में सुसंगत प्रविष्टि के अधीन उपयुक्त हो सकता है । किसी प्ररूपित विक्रय-विलेख का अनुसूची I-ए में कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया है । इसलिए इस प्रक्रम पर स्टाम्प शुल्क या शास्ति के अध्यधीन होना स्टाम्प शुल्क की परिधि के बाहर की कार्रवाई है ।

12. ऐसा नहीं है मानो आवेदक को स्टाम्प शुल्क और रजिस्ट्रीकरण प्रभारों के अध्यधीन लाए बिना अनुतोष दे दिया जाए । यदि वाद डिक्री होता है तो दस्तावेज के रजिस्ट्रीकरण के प्रक्रम पर स्टाम्प शुल्क और रजिस्ट्रीकरण प्रभार संदत्त किए जाएंगे । इसके प्रतिकूल यदि प्रत्यर्थी या उनमें से कोई वाद का विरोध करने में सफल होता है तो आवेदक को न केवल प्रतिफल का नुकसान होगा जो उसने दस्तावेज के अधीन संदत्त करना बताया है अपितु लगभग उसे 60 लाख रुपए का पारिणामिक नुकसान भी होगा जिसे स्टाम्प शुल्क की कमी और रजिस्ट्रीकरण प्रभारों के संबंध में संदत्त किए जाने के लिए कहा गया है । यदि वाद डिक्री भी होता है तो भार बना रहता है और सहने योग्य नहीं है । अधिनियम के अधीन कभी भी ऐसा आशय नहीं हो सकता ।

13. अतः सिविल पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया जाता है और पुनरीक्षण के अधीन आदेश को अपास्त किया जाता है । विचारण न्यायालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह दस्तावेज को साक्ष्य में ग्रहण करे और स्टाम्प शुल्क तथा रजिस्ट्रीकरण प्रभारों के प्रश्न को जो परिणाम पर निर्भर है और जो वाद में प्राप्त हो सकता है, छोड़ दे ।

14. खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

पुनरीक्षण आवेदन मंजूर किया गया ।

मह.

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम

बनाम

कृष्ण मुरारी और एक अन्य

तारीख 5 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति राकेश तिवारी और न्यायमूर्ति अनिल कुमार शर्मा

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163क, 166 और 173 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – क्षति के कारण आहत व्यक्ति की टांग काटने से पृथक् हो जाना – घटना में बस के अन्तर्वलन से इनकार – प्रतिरक्षा में दाखिल किए गए कागजात को साबित न किया जाना – प्रतिरक्षा साक्ष्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता – प्रतिकर ठीक ही अधिनिर्णीत किया गया है ।

इस अपील में 2009 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 190 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 1, गोरखपुर द्वारा तारीख 5 नवम्बर, 2012 को पारित उस अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 को वर्तमान दुर्घटना में पहुंची गंभीर क्षतियों/स्थायी निशक्तता के कारण 6 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज की दर के साथ 4,44,800/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने एक मात्र यह दलील दी है कि अपीलार्थी के यान से दुर्घटना नहीं हुई क्योंकि अपराध से संबंधित बस दुर्घटना से पूर्व अर्थात् लगभग दोपहर 3.30 बजे बस्ती डिपो में आई थी । प्रत्यर्थी/दावेदार के विद्वान् काउंसेल ने अधिनिर्णय का विरोध करते हुए यह दलील दी है कि अपीलार्थी बस के अन्तर्वलन का तथ्य पी. डब्ल्यू.-1 और पी. डब्ल्यू.-2 के साक्ष्य से साबित हो गया है । पी. डब्ल्यू.-1 और पी. डब्ल्यू.-2 दोनों आहत साक्षी हैं जिनका दुर्घटना के समय घटनास्थल पर उपस्थित होने पर संदेह नहीं किया जा सकता । अपीलार्थी ने चालक कलीम उल्ला डी. डब्ल्यू.-1 के परिसाक्ष्य के माध्यम से अपना पक्षकथन साबित करने का प्रत्यन किया है जिसके विरुद्ध पुलिस ने वर्तमान दुर्घटना के संबंध में न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में आरोप पत्र फाइल किया है । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि उसने अधिकरण के समक्ष डिपो में बस के आगमन और प्रस्थान के बारे में मूल अभिलेख पेश

नहीं किए हैं । केवल 53-ग और 54-ग की फोटो प्रतियां अधिकरण के समक्ष फाइल की गई थीं जो साबित नहीं की गई थीं । इस प्रकार दोनों आहत साक्षियों के स्पष्ट कथनों को दृष्टिगत करते हुए अनाधिकृत दस्तावेज तथा चालक का कथन यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि अपीलार्थी की बस दुर्घटना में शामिल नहीं थी । दावेदार की दाईं टांग घुटने के जोड़ से अलग हो गई थी । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है । (पैरा 5 और 6)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 की प्रथम अपील सं. 606.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री दिनकर मणि त्रिपाठी

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री पवन कुमार

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति राकेश तिवारी ने दिया ।

न्या. तिवारी – अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री दिनकर मणि त्रिपाठी और केवियटकर्ता/प्रत्यर्थी की ओर से श्री पवन कुमार को सुना तथा अपील के ज्ञापन के साथ फाइल किए गए कागज़ात तथा आक्षेपित अधिनिर्णय का भी परिशीलन किया ।

2. इस अपील में 2009 की मोटर दुर्घटना दावा याचिका सं. 190 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण/अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय सं. 1, गोरखपुर द्वारा तारीख 5 नवम्बर, 2012 को पारित उस अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा दावेदार प्रत्यर्थी सं. 1 को वर्तमान दुर्घटना में पहुंची गंभीर क्षतियों/स्थायी निशक्तता के कारण 6 प्रतिशत वार्षिक साधारण ब्याज की दर के साथ 4,44,800/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत की गई है ।

3. यह प्रतीत होता है कि तारीख 17 नवम्बर, 2008 को प्रत्यर्थी सं. 1 राम कुमार के साथ मोटरसाइकिल की पिछली सीट पर बैठकर जा रहा था और जब वे सायं लगभग 5.00 बजे बेलहारा हनुमान मंदिर के सामने पहुंचे तो रोडवेज बस सं. यू पी 53-ए टी/3656 का चालक उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक बस चलाते हुए डुमरियागंज की ओर से आया और प्रत्यर्थी सं. 1 की मोटरसाइकिल को टक्कर मार कर नीचे गिरा दिया, जिससे उसे घातक क्षतियां पहुंचीं । यह भी अभिकथन किया गया है कि

उपचार के दौरान उसकी दाईं टांग घुटने के जोड़ से अलग कर दी गई । दावेदार/प्रत्यर्थी सं. 1 ने 17,85,000/- रुपए की धनराशि अधिनिर्णीत करने के लिए अनुरोध किया है ।

4. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने एक मात्र यह दलील दी है कि अपीलार्थी के यान से दुर्घटना नहीं हुई क्योंकि अपराध से संबंधित बस दुर्घटना से पूर्व अर्थात् लगभग दोपहर 3.30 बजे बस्ती डिपो में आई थी । प्रत्यर्थी/दावेदार के विद्वान् काउंसेल ने अधिनिर्णय का विरोध करते हुए यह दलील दी है कि अपीलार्थी बस के अन्तर्वलन का तथ्य पी. डब्ल्यू.-1 और पी. डब्ल्यू.-2 के साक्ष्य से साबित हो गया है । पी. डब्ल्यू.-1 और पी. डब्ल्यू.-2 दोनों आहत साक्षी हैं जिनका दुर्घटना के समय घटनास्थल पर उपस्थित होने पर संदेह नहीं किया जा सकता । अपीलार्थी ने चालक कलीम उल्ला डी. डब्ल्यू.-1 के परिसाक्ष्य के माध्यम से अपना पक्षकथन साबित करने का प्रत्यन किया है जिसके विरुद्ध पुलिस ने वर्तमान दुर्घटना के संबंध में न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में आरोप पत्र फाइल किया है । इस साक्षी ने यह स्वीकार किया है कि उसने अधिकरण के समक्ष डिपो में बस के आगमन और प्रस्थान के बारे में मूल अभिलेख पेश नहीं किए हैं । केवल 53-ग और 54-ग की फोटो प्रतियां अधिकरण के समक्ष फाइल की गई थीं जो साबित नहीं की गई थीं । इस प्रकार दोनों आहत साक्षियों के स्पष्ट कथनों को दृष्टिगत करते हुए अनाधिकृत दस्तावेज तथा चालक का कथन यह साबित करने के लिए पर्याप्त नहीं हैं कि अपीलार्थी की बस दुर्घटना में शामिल नहीं थी । दावेदार की दाईं टांग घुटने के जोड़ से अलग हो गई थी ।

5. हमारे समक्ष अन्य किसी मुद्दे पर दलील नहीं दी गई है ।

6. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, हमें अपील में कोई बल प्रतीत नहीं होता है और तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है ।

7. इस न्यायालय में अपीलार्थी द्वारा किया गया कानूनी निक्षेप समायोजन के लिए तीन सप्ताह के भीतर संबंधित अधिकरण को लौटाया जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही./मह.

रमेश तिवारी

बनाम

उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 12 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता

उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों के सिवाय) सेवा विनियम, 1981 – विनियम 63 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनहीनता और अनियमितताओं के आधार पर विभागीय कार्यवाही – निगम के चेयरमैन द्वारा अपील में सेवा से हटाने के आदेश को रद्द किया जाना – बहाली के पश्चात् कर्मचारी का मूल वेतन पूर्वतर मूल वेतन पर नियत किया जाना – नियोजक अपील मंजूर होने और उसे आक्षेपित न करने की स्थिति में कर्मचारी को पुराने वेतन पर प्रत्यावर्तित करने के लिए स्वतंत्र नहीं है – अतः ऐसे किसी आदेश को कायम नहीं रखा जा सकता ।

याची के विरुद्ध कतिपय अनियमितताओं और अनुशासनहीनता के आधार पर कार्यवाही की गई थी और उसे पांच वर्ष के लिए मूल वेतन पर प्रत्यावर्तित करने का आदेश किया गया था । अपील में निगम के चेयरमैन ने सेवा से हटाने का आदेश रद्द कर दिया तथापि, पिछली अवधि का जिसमें उसने कार्य नहीं किया था, वेतन अधिनिर्णीत करने से इनकार कर दिया । निगम द्वारा चेयरमैन के आदेश को आक्षेपित न किए जाने के कारण वह अंतिम बन गया । विभाग ने कर्मचारी का पिछले मूल वेतन पर वेतन नियतन किया जिससे व्यथित होकर वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका भागतः मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – याची की यह शिकायत है कि उसकी बहाली के बाद प्रत्यर्थियों ने उसे एक नया पदधारी समझते हुए 4,500/- रुपए के मूल वेतन का संदाय करना शुरू कर दिया । याची का यह पक्षकथन है कि अनुशासनिक प्राधिकारियों द्वारा आदेश पारित करने से पूर्व वह 6,375/- रुपए मूल वेतन प्राप्त कर रहा था । यह दलील दी गई है कि प्रथमतः पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा याची को ऐसा कोई दण्ड अधिनिर्णीत नहीं किया गया था और द्वितीयतः ऐसा दंड जो उसे पूर्व में दिया गया था और

जो याची को मूल वेतनमान में प्रत्यावर्तित करने के बराबर है, इस न्यायालय ने तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश द्वारा अपास्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि ऐसा दण्ड विनियम 63 के अधीन अनुध्यात नहीं है । इस प्रकार यह दलील दी गई है कि इस संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा की गई कार्रवाई स्पष्ट रूप से विधिविरुद्ध है । अध्यक्ष के तारीख 27 नवम्बर, 2008 के आदेश का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात्, न्यायालय यह निष्कर्ष निकालने में असमर्थ है कि याची को मूल वेतनमान में रखने का भी आदेश पारित किया गया है । बहाली के आदेश में याची को केवल उस पिछली अवधि का वेतन देने से इनकार किया गया है जिसमें उसने कार्य नहीं किया था । उपर्युक्त आदेश याची द्वारा 15 वर्ष तक की गई सेवा के लाभों से वंचित नहीं करता है, भले ही वह पिछली मजदूरी का हकदार नहीं होगा । इस प्रकार प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया निर्वचन स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है । इस मामले का एक और पहलू भी है । तारीख 17 जून, 2004 के आदेश से पहले, याची को मूल वेतन पर प्रत्यावर्तन का दंड दिया गया था । स्वीकृततः उक्त आदेश को 2004 की रिट याचिका सं. 26186 में चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश द्वारा यह मंजूर किया था कि विनियम 63 के अधीन ऐसा कोई दण्ड अनुध्यात नहीं है । इस न्यायालय का उपर्युक्त आदेश अंतिम बन गया था क्योंकि इसे निगम द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी-निगम याची के मूल वेतनमान के प्रत्यावर्तन के लिए स्वतंत्र नहीं था, इसलिए पूर्वतर निर्णय में पहले ही उल्लिखित कारणों से इस न्यायालय के तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश के कारण ऐसी कार्रवाई न केवल विधिविरुद्ध होगी अपितु उक्त निर्णय के भंग में होगी । अध्यक्ष के आदेश में "एक नवीन अवसर" वाक्यांश के उपयोग से केवल यह अभिप्रेत है कि याची को सेवा में आने का एक नया अवसर दिया गया है; यह नई नियुक्ति के समान नहीं है जिससे कि याची को मूल वेतनमान में रखा जा सके । उपुर्यक्त को ध्यान में रखते हुए, याची को बहाली की तारीख से मूल वेतनमान में रखने की प्रत्यर्थियों की कार्रवाई पूर्णरूप से अनुचित है और इसलिए विधि में कायम नहीं रखी जा सकती है । तद्नुसार, यह रिट याचिका भागतः मंजूर की जाती है । प्रत्यर्थियों को उस वेतन को विचार में लेकर जो याची सेवा से हटाने से पूर्व आहरित कर रहा था, सिवाय पिछले वेतन के, वेतन नियत करने का निदेश दिया जाता है । (पैरा 4, 8, 9, 10, 11 और 12)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2013]	(2013) 10 एस. सी. सी. 324 : **दीपाली गुंडू सुरवासे** बनाम **क्रांति कनिष्ठ अध्यापक महाविद्यालय** ।	11

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2009 की सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका सं. 32209.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से सर्वश्री ए. बी. सिंह और मनीष सिंह

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अजय सिंह

न्यायमूर्ति मनोज कुमार गुप्ता – याची के काउंसेल और प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से विद्वान् स्थायी काउंसेल तथा प्रत्यर्थी सं. 2 से 5 की ओर से श्री अजय सिंह को सुना ।

2. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल की सहमति से इस रिट याचिका का न्यायालय के नियमों के अनुसार दाखिले के प्रक्रम पर ही अन्तिम रूप से विनिश्चय किया जा रहा है ।

3. याची प्रत्यर्थी-निगम में कनिष्ठ फोरमैन के रूप में कार्य कर रहा है । उसके विरुद्ध अनुशासनहीनता और अनियमितताओं के कतिपय आरोपों पर अनुशासनिक कार्यवाहियां की गई थीं और तारीख 17 जून, 2004 के आदेश द्वारा उसे मामूली दण्ड दिया गया था और उसे पिछले पांच वर्ष के मूल वेतन पर प्रत्यावर्तित करके उसकी सेवा पुस्तिका में प्रतिकूल प्रविष्टि की गई थी । याची ने उक्त आदेश को चुनौती देते हुए, इस न्यायालय के समक्ष 2004 की रिट याचिका संख्या 26168 फाइल की थी, जिसे तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश द्वारा मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया गया था कि उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम कर्मचारी (अधिकारियों के सिवाय) सेवा विनियम, 1981 का विनियम 63 दण्ड के अधिरोपण को अनुध्यात नहीं करता जिसके द्वारा किसी अपचारी

को मूल वेतनमान में प्रत्यावर्तित किया जा सकता है । फलस्वरूप, दण्ड का आदेश अपास्त किया गया था और प्रत्यर्थी-निगम को नया आदेश पारित करने के लिए स्वतंत्रता दी गई थी । तत्पश्चात् तारीख 20 अगस्त, 2007 को नया आदेश पारित किया गया था, जिसके द्वारा याची को सेवा से हटा दिया गया था । याची ने मुख्य महाप्रबंधक के समक्ष अपील फाइल की थी जिसे तारीख 15 जुलाई, 2008 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था । याची ने विनियम 69-क के अधीन यथा अनुध्यात अध्यक्ष के समक्ष पुनरीक्षण मामला फाइल किया था । अध्यक्ष ने तारीख 27 नवम्बर, 2008 के अपने आदेश द्वारा यह मत व्यक्त किया कि सेवा से हटाने का आदेश न्यायोचित नहीं है और इसे अपास्त कर दिया और याची की बहाली के लिए निदेश दिया किन्तु पिछली अवधि का वेतन देने से इनकार कर दिया और याची सेवा में बना रहा । अध्यक्ष के उपरोक्त आदेश को निगम द्वारा चुनौती नहीं दी गई और यह अंतिम बना रहा । याची को सेवा में बहाल कर दिया गया था ।

4. याची की यह शिकायत है कि उसकी बहाली के बाद प्रत्यर्थियों ने उसे एक नया पदधारी समझते हुए 4,500/- रुपए के मूल वेतन का संदाय करना शुरू कर दिया । याची का यह पक्षकथन है कि अनुशासनिक प्राधिकारियों द्वारा आदेश पारित करने से पूर्व वह 6,375/- रुपए मूल वेतन प्राप्त कर रहा था । यह दलील दी गई है कि प्रथमतः पुनरीक्षण प्राधिकारी द्वारा याची को ऐसा कोई दण्ड अधिनिर्णीत नहीं किया गया था और द्वितीयतः ऐसा दंड जो उसे पूर्व में दिया गया था और जो याची को मूल वेतनमान में प्रत्यावर्तित करने के बराबर है, इस न्यायालय ने तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश द्वारा अपास्त करते हुए यह अभिनिर्धारित किया था कि ऐसा दण्ड विनियम 63 के अधीन अनुध्यात नहीं है । इस प्रकार यह दलील दी गई है कि इस संबंध में प्रत्यर्थियों द्वारा की गई कार्रवाई स्पष्ट रूप से विधिविरुद्ध है ।

5. याची के काउंसेल श्री ए. बी. सिंह ने यह दलील दी है कि यद्यपि पुनरीक्षण में अध्यक्ष द्वारा तारीख 27 नवम्बर, 2008 को पारित आदेश को चुनौती दी गई है तथापि, याची ने उक्त अनुतोष पर बल नहीं दिया है ।

6. प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 की ओर से उपस्थित काउंसेल श्री अजय सिंह ने तारीख 17 जून, 2004 के दण्ड के पूर्वतर आदेश का अवलंब लेते

हुए मूल वेतनमान में याची को प्रत्यावर्तित करने वाली प्रत्यर्थी-प्राधिकारी की कार्रवाई को न्यायोचित ठहराने का प्रयत्न किया है । उन्होंने तारीख 27 नवम्बर, 2008 को पुनरीक्षण में अध्यक्ष द्वारा पारित आदेश का इस दलील के लिए अवलंब लिया है कि यह नई नियुक्ति के बराबर होगा और इसलिए, याची को मूल वेतनमान में रखा गया है । उन्होंने अध्यक्ष के तारीख 27 नवम्बर, 2008 के आदेश में उल्लिखित निम्नलिखित शब्दों के प्रयोग का अवलंब लिया है :–

> "एक नवीन अवसर प्रदान करते हुए बरेली क्षेत्र में तैनात किया जाता है ।"

7. मैंने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों पर विचार किया और अभिलेख का परिशीलन किया ।

8. अध्यक्ष के तारीख 27 नवम्बर, 2008 के आदेश का सावधानीपूर्वक परिशीलन करने के पश्चात्, मैं यह निष्कर्ष निकालने में असमर्थ हूं कि याची को मूल वेतनमान में रखने का उसके विरुद्ध कभी भी कोई आदेश पारित किया गया है । बहाली के आदेश में याची को केवल उस पिछली अवधि का वेतन देने से इनकार किया गया है जिसमें उसने कार्य नहीं किया था । उपर्युक्त आदेश याची द्वारा 15 वर्ष तक की गई सेवा के लाभों से वंचित नहीं करता है, भले ही वह पिछली मजदूरी का हकदार नहीं होगा । इस प्रकार प्रत्यर्थियों द्वारा किया गया निर्वचन स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ।

9. इस मामले का एक और पहलू भी है ।

10. तारीख 17 जून, 2004 के आदेश से पहले, याची को मूल वेतन पर प्रत्यावर्तन का दंड दिया गया था । स्वीकृततः उक्त आदेश को 2004 की रिट याचिका सं. 26186 में चुनौती दी गई थी, जिसे इस न्यायालय ने स्पष्ट निष्कर्ष अभिलिखित करते हुए तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश द्वारा मंजूर कर लिया था कि विनियम 63 के अधीन ऐसा कोई दण्ड अनुध्यात नहीं है । इस न्यायालय का उपर्युक्त आदेश अंतिम बन गया था क्योंकि इसे निगम द्वारा चुनौती नहीं दी गई थी । उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी-निगम याची के मूल वेतनमान के प्रत्यावर्तन के लिए स्वतंत्र नहीं था, इसलिए पूर्वतर निर्णय में पहले ही उल्लिखित कारणों से इस न्यायालय के तारीख 21 फरवरी, 2005 के आदेश के कारण ऐसी

कार्रवाई न केवल विधिविरुद्ध होगी अपितु उक्त निर्णय के भंग में होगी ।

11. अध्यक्ष के आदेश में "एक नवीन अवसर" वाक्यांश के उपयोग से केवल यह अभिप्रेत है कि याची को सेवा में आने का एक नया अवसर दिया गया है; यह नई नियुक्ति के समान नहीं है जिससे कि याची को मूल वेतनमान में रखा जा सके जैसाकि उच्चतम न्यायालय ने **दीपाली गुंडू सुरवासे** बनाम **क्रांति कनिष्ठ अध्यापक महाविद्यालय**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है ।

12. उपुर्यक्त को ध्यान में रखते हुए, याची को बहाली की तारीख से मूल वेतनमान में रखने की प्रत्यर्थियों की कार्रवाई पूर्णरूप से अनुचित है और इसलिए विधि में कायम नहीं रखी जा सकती है । तद्नुसार, यह रिट याचिका भागतः मंजूर की जाती है । प्रत्यर्थियों को उस वेतन को विचार में लेकर जो याची सेवा से हटाने से पूर्व आहरित कर रहा था, सिवाय पिछले वेतन के, वेतन नियत करने का निदेश दिया जाता है । इस संबंध में संपूर्ण बकाया संगणित की जाएगी और प्रत्यर्थी सं. 4 के समक्ष इस आदेश की प्रमाणित प्रति प्रस्तुत करने की तारीख से तीन मास की अवधि के भीतर याची को संदत्त की जाएगी ।

13. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा अन्य किसी मुद्दे पर दलील नहीं दी गई है ।

14. खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।

रिट याचिका भागतः मंजूर की गई ।

मही./मह.

---

[1] (2013) 10 एस. सी. सी. 324.

नरेन्द्र कुमार

बनाम

मुख्य सूचना आयुक्त, उत्तराखंड और अन्य

तारीख़ 9 मई, 2014

न्यायमूर्ति आलोक सिंह

सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 (2005 का 22) – धारा 6 और 20 – सूचना प्रदाय करने में विलंब – शास्ति – अधिकारी द्वारा विलंब से सूचना प्रदाय करने के लिए समुचित कारण बताया जाना – जहां सूचना का प्रदाय करने वाले प्राधिकारी द्वारा समय के भीतर सूचना प्रदान न करने के लिए समुचित कारण बताए गए हों वहां सूचना देने में कतिपय विलंब होने पर अति तकनीकी आधार पर शास्ति अधिरोपित करना उचित नहीं है ।

वर्तमान रिट याचिका में मुख्य सूचना आयुक्त द्वारा तारीख 10 सितंबर, 2013 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा याची के विरुद्ध न्यायालय के समक्ष प्रत्यर्थी सं. 2 पर विलंब से सूचना देने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 20(1) के अधीन 25,000/- रुपए की शास्ति अधिरोपित की गई है । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – सूचना का अधिकार अधिनियम की धारा 20 के परिशीलन के पश्चात् न्यायालय को यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जहां, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त की परिवाद या अपील की सुनवाई के पश्चात् यह राय है कि यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना सूचना के लिए किसी आवेदन को प्राप्त करने से इंकार किया है या धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन निर्दिष्ट अवधि के भीतर सूचना उपलब्ध नहीं कराई है या असद्भाविक रूप से सूचना के लिए अनुरोध से इंकार किया है या जानबूझकर गलत या अधूरी सूचना दी है अथवा सूचना भ्रमित करने वाली है या सूचना को नष्ट किया है जो अनुरोध की विषयवस्तु थी, उस दशा में शास्ति अधिरोपित की जा सकती है । इस न्यायालय की यह भी राय है कि

यदि सूचना विलंब से प्रदान करने के लिए युक्तियुक्त कारण मौजूद हो तो मुख्य सूचना आयुक्त को मात्र इस कारण शास्ति अधिरोपित नहीं करनी चाहिए कि सूचना का प्रदाय करने में विलंब हुआ था । वर्तमान मामले में प्रथमतः अपीलार्थी उस समय अपील प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं था जब अपील में सुनवाई की गई थी क्योंकि सूचना पहले ही दी जा चुकी थी । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी सं. 1 के द्वारा दिया गया यह स्पष्टीकरण कि उसने तुरन्त सूचना प्रदत्त करने के लिए प्रधान लिपिक को निदेश दिया था किन्तु इस कारण से उसके स्थानांतरण के पूर्व सूचना का प्रदाय नहीं हो सका क्योंकि नगर परिषद् के सभी कर्मचारी कलक्टर, रुद्रपुर के आदेश के अधीन आंकड़ों का संग्रह करने और निर्वाचन पहचान-पत्र को तैयार करने में लगे हुए थे तथा जून, 2013 में आई प्राकृतिक आपदा के पश्चात् बचाव कार्य में लगे हुए थे, समय के भीतर सूचना का प्रदाय न करने के लिए युक्तियुक्त प्रतीत होता है । परिणामतः इस अति तकनीकी आधार पर शास्ति का अधिरोपण कि सूचना 30 दिनों के भीतर उपलब्ध नहीं कराई गई थी, पूर्ण रूप से अनुचित और मनमाना प्रतीत होता है । (पैरा 7, 8 और 9)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की रिट याचिका सं. 2730.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री देवेश बिश्नोई

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री देवेश उपरिती

न्यायमूर्ति आलोक सिंह – वर्तमान रिट याचिका में मुख्य सूचना आयुक्त द्वारा तारीख 10 सितंबर, 2013 को पारित उस आदेश को आक्षेपित किया गया है जिसके द्वारा याची के विरुद्ध मेरे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 2 पर विलंब से सूचना देने के लिए सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 20(1) के अधीन 25,000/- रुपए की शास्ति अधिरोपित की गई है ।

2. वर्तमान मामले के संक्षिप्त तथ्य अन्य बातों के साथ-साथ इस प्रकार हैं कि प्रत्यर्थी सं. 2 ने जो एक कार्यकारी अधिवक्ता है, तारीख 19 जुलाई, 2012 को एक आवेदन जो याचिका के साथ उपाबंध सं. 2 के रूप में उपाबद्ध किया गया है, न्यायालय के समक्ष के याची के समक्ष फाइल किया था जो सुसंगत समय पर नगर परिषद्, रुद्रपुर,

ऊधम सिंह नगर में कार्यपालक अधिकारी था । तारीख 19 जुलाई, 2012 के इस आवेदन में कतिपय सूचनाएं उपलब्ध कराने की ईप्सा की गई थी । अविवादित रूप से रिट याचिका के उपाबंध सं. 2 की क्रम सं. 2 और 3 पर मांगी गई सूचनाओं का प्रत्यर्थी सं. 2 को तारीख़ 2 जुलाई, 2013 को प्रदाय किया गया था ।

3. अविवादित रूप से हमारे समक्ष के याची का मई, 2013 में नगर परिषद्, रुद्रपुर से स्थानांतरण हो गया था ।

4. प्रत्यर्थी सं. 1 से सूचना (नोटिस) प्राप्त होने पर हमारे समक्ष के याची ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिकथित करते हुए तारीख 9 सितंबर, 2013 को अपना उत्तर फाइल किया कि प्रथम अपील न्यायालय के तारीख 11 फरवरी, 2013 के आदेश की उस पर तारीख 26 फरवरी, 2013 को उसके कार्यालय में तामील हुई थी और उसके तुरन्त पश्चात् याची ने नगर परिषद् में कार्य कर रहे प्रधान लिपिक को शीघ्रातिशीघ्र सूचनाएं उपलब्ध कराने के लिए निदेश दिया था, तथापि, चूंकि नगर परिषद् के अधिकतर कर्मचारी सुसंगत आंकड़े और निर्वाचन पहचान-पत्र एकत्रित करने और तैयार करने में तथा मई-जून, 2013 में आई प्राकृतिक आपदा में बचाव कार्य करने में व्यस्त थे इसलिए समय के भीतर सूचना उपलब्ध नहीं कराई जा सकी ।

5. अविवादित रूप से अपील में प्रत्यर्थी सं. 2 के समक्ष तारीख नियत होने पर अपीलार्थी की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ । ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे समक्ष का अपीलार्थी/प्रत्यर्थी सं. 2 इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए अपील में पैरवी करने के लिए हितबद्ध नहीं था कि मांगी गई सूचना उसे पहले ही उपलब्ध करा दी गई थी । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपील में कार्यवाही करते हुए यह मत व्यक्त किया कि सूचना विलंब के साथ प्रदत्त की गई थी इसलिए याची के ऊपर 25,000/- रुपए की शास्ति अधिरोपित की गई थी ।

6. सूचना का अधिकार अधिनियम, 2005 की धारा 20 इस प्रकार है :–

> "20. **शास्ति** – (1) जहां किसी शिकायत या अपील का विनिश्चय करते समय, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग की यह राय है कि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी ने, किसी

युक्तियुक्त कारण के बिना सूचना के लिए, कोई आवेदन प्राप्त करने से इनकार किया है या धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन सूचना के लिए विनिर्दिष्ट समय के भीतर सूचना नहीं दी है या असद्भावपूर्वक सूचना के लिए अनुरोध से इंकार किया है या जानबूझकर गलत, अपूर्ण या भ्रामक सूचना दी है या उस सूचना को नष्ट कर दिया है, जो अनुरोध का विषय थी या किसी रीति से सूचना देने में बाधा डाली है, तो वह ऐसे प्रत्येक दिन के लिए, जब तक आवेदन प्राप्त किया जाता है या सूचना दी जाती है, दो सौ पचास रुपए की शास्ति अधिरोपित करेगा, तथापि, ऐसी शास्ति की कुल रकम पच्चीस हजार रुपए से अधिक नहीं होगी :

परंतु, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी को, उस पर कोई शास्ति अधिरोपित किए जाने के पूर्व, सुनवाई का युक्तियुक्त अवसर दिया जाएगा :

परंतु यह और कि यह साबित करने का भार कि उसने युक्तियुक्त रूप से और तत्परतापूर्वक कार्य किया है, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी पर होगा ।

(2) जहां किसी शिकायत या अपील का विनिश्चय करते समय, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयोग या राज्य सूचना आयोग की यह राय है कि, यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी, किसी युक्तियुक्त कारण के बिना और लगातार सूचना के लिए कोई आवेदन प्राप्त करने में असफल रहा है या उसने धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन विनिर्दिष्ट समय के भीतर सूचना नहीं दी या असद्भावपूर्वक सूचना के लिए अनुरोध से इंकार किया है या जानबूझकर गलत, अपूर्ण या भ्रामक सूचना दी है या सूचना को नष्ट कर दिया है, जो अनुरोध का विषय थी या किसी रीति से सूचना देने में बाधा डाली है वहां वह, यथास्थिति, ऐसे केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी के विरुद्ध उसे लागू सेवा नियमों के अधीन अनुशासनिक कार्रवाई के लिए सिफारिश करेगा ।"

7. अधिनियम की धारा 20 के परिशीलन के पश्चात् मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि जहां, यथास्थिति, केन्द्रीय सूचना आयुक्त या राज्य सूचना आयुक्त की परिवाद या अपील की

सुनवाई के पश्चात् यह राय है कि यथास्थिति, केन्द्रीय लोक सूचना अधिकारी या राज्य लोक सूचना अधिकारी ने किसी युक्तियुक्त कारण के बिना सूचना के लिए किसी आवेदन को प्राप्त करने से इंकार किया है या धारा 7 की उपधारा (1) के अधीन निर्दिष्ट अवधि के भीतर सूचना उपलब्ध नहीं कराई है या असद्भाविक रूप से सूचना के लिए अनुरोध से इंकार किया है या जानबूझकर गलत या अधूरी सूचना दी है अथवा सूचना भ्रमित करने वाली है या सूचना को नष्ट किया है जो अनुरोध की विषयवस्तु थी, उस दशा में शास्ति अधिरोपित की जा सकती है । इस न्यायालय की यह भी राय है कि यदि सूचना विलंब से प्रदान करने के लिए युक्तियुक्त कारण मौजूद हो तो मुख्य सूचना आयुक्त को मात्र इस कारण शास्ति अधिरोपित नहीं करनी चाहिए कि सूचना का प्रदाय करने में विलंब हुआ था ।

8. वर्तमान मामले में प्रथमतः अपीलार्थी उस समय अपील प्राधिकारी के समक्ष उपस्थित नहीं था जब अपील में सुनवाई की गई थी क्योंकि सूचना पहले ही दी जा चुकी थी । इसके अतिरिक्त प्रत्यर्थी सं. 1 के द्वारा दिया गया यह स्पष्टीकरण कि उसने तुरन्त सूचना प्रदत्त करने के लिए प्रधान लिपिक को निदेश दिया था किन्तु इस कारण से उसके स्थानांतरण के पूर्व सूचना का प्रदाय नहीं हो सका क्योंकि नगर परिषद् के सभी कर्मचारी कलक्टर, रुद्रपुर के आदेश के अधीन आंकड़ों का संग्रह करने और निर्वाचन पहचान-पत्र को तैयार करने में लगे हुए थे तथा जून, 2013 में आई प्राकृतिक आपदा के पश्चात् बचाव कार्य में लगे हुए थे, समय के भीतर सूचना का प्रदाय न कराने के लिए युक्तियुक्त प्रतीत होता है ।

9. परिणामतः इस अति तकनीकी आधार पर शास्ति का अधिरोपण कि सूचना 30 दिनों के भीतर उपलब्ध नहीं कराई गई थी, पूर्ण रूप से अनुचित और मनमाना प्रतीत होता है ।

10. परिणामतः रिट याचिका मंजूर की जाती है । तारीख 10 सितंबर, 2013 का आक्षेपित आदेश एतद्द्वारा अभिखंडित किया जाता है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

सुमति और अन्य

बनाम

कमलम्मा

तारीख 1 जुलाई, 2013

न्यायमूर्ति एन्टोनी डोमिनिक और न्यायमूर्ति पी. डी. राजन

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 28 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 494 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 31 और 34] – विवाह तत्समय प्रवृत्त रीति-रिवाज के साथ सम्पन्न नहीं होना – नातेदारों और अन्य व्यक्तियों द्वारा उनकी पति-पत्नी के रूप में एक साथ एक ही स्थान पर रहने की पुष्टि नहीं करना – वैध विवाह की उपधारणा नहीं होना – इस हैसियत में निष्पादित दस्तावेज शून्य और अवैध होना – यदि अभिलेख पर के साक्ष्यों (मौखिक और दस्तावेजी) से यह साबित नहीं होता है कि किसी स्त्री-पुरुष के बीच तत्समय प्रवृत्त रीति-रिवाज के साथ विवाह सम्पन्न हुआ था और उनके विवाह की पुष्टि उनके नातेदार और अन्य व्यक्ति भी नहीं करते हैं तथा वे एक साथ रहते भी नहीं थे तो इन परिस्थितियों में उनके बीच वैध विवाह की उपधारणा नहीं की जा सकती है और ऐसी दशा में, पत्नी की हैसियत से ऐसे पति की सम्पत्ति के बारे में निष्पादित कोई भी दस्तावेज शून्य और अवैध होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के विधिक उत्तराधिकारी हैं । प्रथम अपीलार्थी का मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ विवाह प्रथागत रीति-रिवाजों के अनुसार तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को हुआ था और उस विवाह से अपीलार्थी सं. 2 से 4 बच्चे उत्पन्न हुए थे । तारीख 17 अप्रैल, 1979 को कोचुरमन् कोचुकुंज की मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु होने तक अपीलार्थी मुत्तथरा ग्राम में याचिका अनुसूचित संपत्ति में उसके साथ रह रहे थे । यह कथित है कि प्रत्यर्थी ने वादपत्र अनुसूचित संपत्ति के ऊपर दावा किया और उसने मुस्तफा के पक्ष में विक्रय-विलेख सं. 2487/80 के माध्यम से 6-1/2 सेन्ट्स के लिए एक विक्रय-विलेख निष्पादित किया । उसे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था और वह विलेख आरम्भतः शून्य है । अपीलार्थी वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में रह रहे हैं

और मृतक के विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते वे संपत्ति के पूर्णरूपेण स्वामी हैं । द्वितीय अपीलार्थी ने विभाजन कराने और द्वितीय प्रतिवादी के रूप में प्रत्यर्थी क्योंकि उसने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी होने का दावा किया है, को अभिवाचित कराने के लिए मुंसिफ न्यायालय के समक्ष मूल वाद सं. 517/81 फाइल किया । अपीलार्थियों के अनुसार, इन परिस्थितियों में, इस बात की घोषणा की जानी आवश्यक है कि प्रथम अपीलार्थी, मृतक की पत्नी है और अपीलार्थी सं. 2 से 4 उनके बच्चे हैं । अपीलार्थियों ने विक्रय-विलेख को भी अपास्त करने और प्रत्यर्थी के विरुद्ध व्यादेश जारी करने के लिए भी प्रार्थना की है । निचले न्यायालय में, प्रत्यर्थी ने एक लिखित कथन फाइल किया जिसमें यह दलील दी है कि अपीलार्थी का मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ कोई संबंध नहीं था किन्तु दूसरी ओर, वह मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी थी । प्रथम अपीलार्थी नानूकुट्टन की पत्नियों में से एक है जो कोवलम में रहती है, अन्य अपीलार्थी उसके बच्चे हैं और उनका मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ कोई संबंध नहीं था । मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की मृत्यु के पश्चात्, द्वितीय अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी की संपत्ति में अतिचार किया और विभाजन के लिए एक वाद 1979 की मूल वाद सं. 913 फाइल की । इसके पश्चात्, उसने एक अन्य वाद 1981 की मूल वाद सं. 517/81 फाइल की और दोनों मामलों को मुंसिफ न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । प्रत्यर्थी के अनुसार अपीलार्थियों का वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में कोई अधिकार या कब्जा नहीं है और मूल याचिका प्राग-न्याय द्वारा वर्जित था । यह दलील दी गई कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी होने के नाते प्रत्यर्थी में उसकी मृत्यु होने के पश्चात् उसके अधिकार अन्तर्निहित हो गए । उसने जिला कलक्टर से अनुज्ञा लेने के पश्चात् विक्रय-विलेख सं. 2487/1980 निष्पादित की ताकि उससे अर्जित धन से कोचुरमन् कोचुकुंज का उपचार हो सके । उस संपत्ति को मुस्तफ़ा को अन्तरित किया गया था और उसके अनुसार शेष 6-1/2 सेन्ट्स उसके कब्जे में थी । अतएव, उसने याचिका खारिज करने की प्रार्थना की । विचारण न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षकारों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया । उनके साक्ष्यों में अभि. सा. 1 से 3 और सी. पी. डब्ल्यू. 1 से सी. पी. डब्ल्यू. 3 के मौखिक परिसाक्ष्य और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-11 तथा प्रदर्श बी-1 से प्रदर्श बी-18 के दस्तावेजी साक्ष्य सम्मिलित थे । निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों का सूक्ष्म परीक्षण करने और तौलने के पश्चात्

वाद खारिज कर दिया । इस निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने यह अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रथम अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष यह घोषणा करने की प्रार्थना की कि वह मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की वैधतः विवाहित पत्नी है । उसका प्रयास घोषणात्मक अनुतोष के द्वारा अपने विवाह को कानूनी मान्यता दे देना है । इस मुद्दे को साबित करने के लिए उसने विचारण न्यायालय के समक्ष स्वयं को साक्षी (अभि. सा. 1) के रूप में परीक्षा की । अभि. सा. 1 के साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज का उसके साथ विवाह तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को हुआ था, इसके पश्चात्, वह याचिका अनुसूचित संपत्ति में तारीख 17 अप्रैल, 1979 को उसकी मृत्यु होने तक उसके साथ रही । उनके विवाह से अपीलार्थी सं. 2 से 4 बच्चे उत्पन्न हुए और वे एक साथ उस संपत्ति में रहते थे । निवास को साबित करने के लिए उसने विचारण न्यायालय के समक्ष राशन कार्ड, प्रदर्श ए-1 और स्वीकृति रजिस्टर उद्धरण की प्रतियां प्रदर्श ए-2 और ए-2(1) प्रस्तुत कीं । इसके अतिरिक्त, विवाह को साबित करने के लिए उसने के. पी. एम. एस. से एक प्रमाणपत्र प्राप्त किया जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श ए-3 के रूप में चिह्नित किया गया है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श ए-4 से प्रदर्श ए-11 दस्तावेज भी चिह्नित किए गए । प्रदर्श ए-1 को सचिव, के. पी. एम. एस. द्वारा ही तारीख 18 फरवरी, 1980 को जारी किया गया था जिसने विवाह समारोह में हिस्सा नहीं लिया था और उसे विवाह समारोह के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । यह पाया गया है कि संगठन के. पी. एम. एस. वर्ष 1970 के पश्चात् ही गठित हुआ था और उन साक्षियों में से जिन्होंने अभि. सा. 1 के विवाह समारोह में भाग लिया था, किसी भी साक्षी की कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष परीक्षा नहीं की गई । यद्यपि, अभि. सा. 1 ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि जब उसका विवाह मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ हुआ था तब विवाह के समय उसकी आयु क्या थी, उस समय उनके समुदाय में कौन सी प्रथा अविभावी थी, विवाह आदि में किन अनुष्ठानों का अनुसरण किया जाता है, के बारे में कोई अभिवाक् नहीं दिया और न ही प्रथम अपीलार्थी द्वारा साबित किया गया । उन व्यक्तियों की शनाख्त जिन्होंने विवाह समारोह में भाग लिया था, भी प्रकट नहीं किए गए न ही उनमें से किसी व्यक्ति की परीक्षा की गई । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3, प्रथम अपीलार्थी की क्रमशः पुत्री और दामाद हैं जिन्होंने अभि. सा. 1 के साक्ष्य

का समर्थन किया है किन्तु उन्हें विवाद के बारे में कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं थी । इस प्रकार, यद्यपि अभि. सा. 1 से अभि. सा. 3 की परीक्षा की गई किन्तु, प्रथम अपीलार्थी के साक्ष्य से यह दर्शित नहीं होता है कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज और प्रथम अपीलार्थी के बीच प्रथागत विवाह तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को सम्पन्न हुआ था । प्रत्यर्थी, जिसकी सी. पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा हुई, ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसका विवाह कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ तारीख 1 जनवरी, 1960 को हुआ था और क्योंकि उन्हें कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई इसलिए उन्होंने "अम्बी" नाम के एक बच्चे को गोद ले लिया था । उसके साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मूल वाद सं. 913/75 जो मुंसिफ न्यायालय तिरुवनंतपुरम में फाइल किया गया था, में सी. पी. डब्ल्यू. 1 को मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया था किन्तु, प्रथम अपीलार्थी ने इस तथ्य को इस मामले में छिपाया । सी. पी. डब्ल्यू. 1 के अनुसार, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ उसका विवाह होने के पश्चात् वे एक साथ याचिका अनुसूचित संपत्ति में रहने लगे थे । सी. पी. डब्ल्यू. 2 ने यह स्वीकार किया कि उसके पिता ने सी. पी. डब्ल्यू. 1 से ग्राम मुत्तथरा में सर्वे सं. 2651 में 6-1/2 सेन्ट्स भूमि क्रय की थी । सी. पी. डब्ल्यू. 3 ने यह स्वीकार किया कि उसने प्रत्यर्थी से 6-1/2 सेन्ट्स भूमि क्रय की थी । सी. पी. डब्ल्यू. 3 लगभग 40 वर्षों से प्रत्यर्थी और उसके पति कोचुरमन् कोचुकुंज को जानता था । उसके अनुसार, उस समय पर कोचुरमन् कोचुकुंज और सी. पी. डब्ल्यू. 1 एक झोपड़ी में पार्वती पुतेन नदी के किनारे रहते थे और उसके तत्पश्चात् कोचुकुंज द्वारा सरकार से पट्टा प्राप्त किया गया था और उस संपत्ति में से उसने 6-1/2 सेन्ट्स भूमि क्रय की थी और तत्पश्चात् उस संपत्ति को अपनी पुत्री को दान में दे दिया । अब यह दर्शित होना है कि क्या उपर्युक्त साक्षियों के साक्ष्य स्वीकार किए जाने योग्य हैं । प्रथम अपीलार्थी ने यह दावा किया कि कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ उसका विवाह तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को हुआ था । वर्ष 2009 में यह अपील फाइल करते समय वह 72 वर्ष की थी । यदि ऐसा था तो वह वर्ष 1937 में पैदा हुई होगी । वर्ष 2009 में, जब अपील फाइल की गई थी तब एम. ई. सदृश 1184 थी । यदि ऐसा है तो उनका विवाह 1184 एम. ई. के 51 वर्ष पूर्व हुआ होना चाहिए, वह वर्ष 1958 होना चाहिए । किन्तु, सी. पी. डब्ल्यू. 1 का साक्ष्य अभि. सा. 1 के मुकाबले अधिक अधिसंभाव्य पाया जाता है । उसके साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मृतक कोचुरमन्

कोचुकुंज के साथ उसका विवाह तारीख 1 जनवरी, 1960 को हुआ था और उसके पश्चात् वह अपने मृतक पति के साथ वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में रहती थी । इसे साबित करने के लिए उसने जिला सैनिक वेलफेयर आफिस से प्राप्त पत्र प्रदर्श बी-6 प्रस्तुत किया । प्रदर्श बी-7, एस. एस. एल. सी. प्रमाणपत्र की प्रतिलिपि है । प्रदर्श बी-14, प्रत्यर्थी द्वारा कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार के संबंध में प्राप्त अग्रिम धन के लिए सुबैदा बीवी के पक्ष में प्रत्यर्थी द्वारा जारी प्राप्ति है । प्रदर्श बी-6, मृत्यु प्रमाणपत्र की प्रतिलिपि है । प्रदर्श बी-18, पहचान-पत्र की प्रतिलिपि है । सी. पी. डब्ल्यू. 1 ने सुस्पष्टतः यह कथन किया कि उसने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार खर्चों के लिए संपत्ति विक्रय की थी । न्यायालय के अनुसार, विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के साक्ष्य का सही तौर पर विश्लेषण किया है और विवादित विवाह के बारे में स्वीकार्य निष्कर्ष पर पहुंचा है । इसलिए, न्यायालय की यह राय है कि अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि प्रथम अपीलार्थी, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी है और अन्य अपीलार्थी उनके बच्चे हैं । विवाह की वैधता और बच्चों के धर्मजत्व के पक्ष में उपधारणा की जा सकती है यदि पक्षकारों के विवाह के समय से उनके नातेदारों और अन्य व्यक्तियों द्वारा उन्हें पत्नी और पति के रूप में स्वीकार किया जाता है और यदि इसके पश्चात् इसे किसी दस्तावेज में उल्लिखित किया जाता है । यह उपधारणा मात्र तभी लागू हो सकती है जब वैध विवाह के अनुष्ठान की औपचारिक अपेक्षाएं साबित कर दी जाती हैं । उसी समय पर, जब एक स्त्री उस व्यक्ति के संरक्षण में रहती है जो संयुक्त रूप से उसके और उसके बच्चों की जानकारी में उसके साथ रहता है, जिनसे यह मजबूत उपधारणा उद्भूत हो सकती है कि वह उस व्यक्ति की पत्नी है । तथापि, विवाह की यह उपधारणा भी तथ्यों के सबूत द्वारा खंडित की जा सकती है, यह दर्शित करते हुए कि उनके बीच कोई विवाह नहीं हुआ है । माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सुस्थिर विधि को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि यदि एक पुरुष और एक स्त्री एक ही छत के नीचे पर्याप्त लम्बे समय से एक साथ रहते हैं तो इससे युक्तियुक्त तौर पर विधिक और विधिमान्य विवाह की उपधारणा उद्भूत होती है और उनके विवाह से उत्पन्न बच्चे उनके धर्मज बच्चे होते हैं । विवाह के बारे में उपधारणा एक खंडनीय उपधारणा होती है और ऐसी उपधारणा को खंडित करने के लिए मजबूत साक्ष्य अपेक्षित होते हैं और विवादित पक्षकार अनन्य रूप से साबित करने के लिए यह साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं कि यह वैध

विवाह नहीं है और वैध विवाह की संभाव्यता को सकारात्मक साक्ष्य के माध्यम से पूर्णरूपेण इनकार कर दिया जाना चाहिए । जब वैध विवाह नहीं होता है और दोनों पक्षकार अपनी दलीलों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं तो न्यायालय अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर इस प्रश्न का विनिश्चय करता है । ऐसे मामले में, अपनी दलील को साबित करने का भार एक से दूसरे पर स्थानांतरित होता रहता है जैसा और जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरुद्ध मुद्दे को साबित करता है । यद्यपि प्रथम अपीलार्थी ने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी होने का दावा किया है किन्तु उसने अपने प्रथागत विवाह के अनुष्ठान को साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । विवाह के संबंध में, शब्द "अनुष्ठान" से अभिप्राय है, समुचित समारोह और सम्यक् प्ररूप में विवाह संपन्न होना । इसलिए, जब तक कि विवाह समुचित समारोह में संपन्न नहीं होता या पूरा नहीं होता तब तक इसे विवाह अनुष्ठान होना नहीं कहा जा सकता है । जब प्रथम अपीलार्थी विवादित तथ्यों में अपने विधिक हैसियत को साबित करने में असफल रही तो वह घोषणात्मक डिक्री पाने के लिए हकदार नहीं रही, जैसा कि उसने दावा किया है । एक पर-व्यक्ति या एक बाहरी व्यक्ति जो किसी संपत्ति में कोई विधिक हैसियत या अधिकार किसी भी तरीके से नहीं रखता है वह उस संपत्ति में हक रखने वाले या कब्जा रखने वाले व्यक्ति के विरुद्ध धारा 34 के अधीन घोषणा के लिए वाद संस्थित करने का हकदार नहीं होता है । विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर विचार किया और ईप्सित घोषणा मंजूर करने से इनकार कर दिया । न्यायालय, निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष में कोई अवैधता नहीं पाते हैं । (पैरा 8, 9, 10, 11, 12 और 13)

इस परिप्रेक्ष्य में, न्यायालय यह विचार करता है कि क्या विक्रय-विलेख सं. 2487/80 अकृत और शून्य है तथा यह अपास्त किए जाने योग्य है । जब कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध एक लिखत शून्य या शून्यकरणीय होता है और जिसको यह युक्तियुक्त आशंका होती है कि ऐसा लिखत यदि विद्यमान छोड़ दी गई तो वह उसे गंभीर क्षति कारित कर सकती है जिससे वाद का न्यायनिर्णयन शून्य या शून्यकरणीय हो सकता है । ऐसी स्थिति में, न्यायालय को यह न्यायनिर्णयन करने का विवेकाधिकार हो जाता है तथा वह आदेश दे सकता है और रद्द कर सकता है । यह स्वीकृत तथ्य है कि वादपत्र अनुसूचित सम्पत्ति 12-1/2 सेन्ट्स थी और प्रत्यर्थी ने उसका एक भाग सी. पी. डब्ल्यू. 3 को विक्रय

कर दिया था । सी. पी. डब्ल्यू. 1 के अनुसार वह वादपत्र अनुसूचित सम्पत्ति में रह रही है और उसने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार खर्चों के लिए सम्पत्ति में से 6-1/2 सेन्ट्स सी. पी. डब्ल्यू. 3 को विक्रय कर दिया था । व्यादेश के लिए एक पूर्ववर्ती वाद फाइल किया गया था जिसे निर्णय प्रदर्श पी-4 द्वारा खारिज कर दिया गया था । प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श बी-2 विक्रय-विलेख हैं, प्रदर्श बी-3 और प्रदर्श बी-4, मूल वाद सं. 517/81 और अपील वाद सं. 368/88 में दिए गए निर्णयों की प्रतियां हैं । प्रदर्श बी-9 डिक्री की प्रमाणित प्रति है और प्रदर्श बी-10 मूल वाद सं. 913/97 में निर्णय की प्रमाणित प्रति है । प्रदर्श बी-14, कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार के बारे में उसके द्वारा प्राप्त अग्रिम राशि के लिए प्रत्यर्थी द्वारा सुबैदा बीवी को जारी प्राप्ति है । प्रदर्श बी-16 मृत्यु प्रमाणपत्र की प्रति है और प्रदर्श बी-18 पहचान-पत्र की प्रति है । साक्ष्य में प्रस्तुत उपर्युक्त दस्तावेजों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि उनका विवादित वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में कोई अधिकार है । प्रदर्श बी-1 से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी ने जिला कलक्टर की मंजूरी प्राप्त करने के पश्चात् मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार के लिए विक्रय-विलेख सं. 2487/1980 द्वारा संपत्ति विक्रय की थी । इसलिए, लिखत के रद्द होने की दशा में प्रथम अपीलार्थी को यह सिद्ध करना है कि हक स्वयं उसके पक्ष में है और यदि इसे रद्द नहीं किया जाता है तो प्रत्यर्थी द्वारा इसका उपयोग उसे तंग करने के लिए किया जा सकता है । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थियों का वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है । साक्ष्य के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी अभिकथित विवादित संपत्ति में अपने अधिकार साबित करने में असफल रहे हैं और ऐसी स्थिति में निचले न्यायालय ने सही ही लिखत रद्द करने से इनकार किया है । इस निर्णय को देने के पूर्व, न्यायालय यह मत व्यक्त करता है कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वाद, "प्राग न्याय" के सिद्धांत द्वारा वर्जित है । द्वितीय अपीलार्थी ने वादपत्र अनुसूचित संपत्ति का विभाजन करने के लिए मुंसिफ न्यायालय, तिरुवनन्तपुरम के समक्ष मूल वाद सं. 913/79 फाइल की थी और निचले न्यायालय द्वारा वाद खारिज कर दिया गया था क्योंकि उस पर जोर नहीं दिया गया था । व्यादेश की ईप्सा करते हुए, पुनः मूल वाद सं. 517/1981 फाइल की गई और उस वाद को भी खारिज कर दिया गया था जिसके विरुद्ध उसने पुनः एक अपील फाइल

की जिसे भी अपील न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पूर्ववर्ती वाद और अपील में पक्षकारों की स्थिति के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था और इसलिए, प्राग न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होता है । यह स्पष्ट है कि वैवाहिक प्रास्थिति का प्रश्न पूर्ववर्ती वाद में विवाद्यक के रूप में विनिर्दिष्टतः अभिवाचित नहीं किया गया था और उस मुद्दे पर कोई विनिश्चय नहीं किया गया था । प्राग न्याय का सिद्धांत उसी वाद या विवाद्यक में लागू होता है जिसमें विषयवस्तु प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्यक होता है और उन्हीं पक्षकारों के बीच या उसी हक के अधीन मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों के बीच पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य रहा हो । द्वितीय अपीलार्थी द्वारा पूर्ववर्ती वादों को विभाजन और व्यादेश के लिए मुंसिफ न्यायालय, तिरुवनन्तपुरम में फाइल किए गए थे । निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उपर्युक्त वादों में पक्षकारों की प्रास्थिति के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था और दोनों वादों में पक्षकार भिन्न थे । इन मताभिव्यक्तियों के आधार पर, कुटुम्ब न्यायालय ने बिना कोई विवाद्यक विरचित किए प्राग न्याय के संबंध में दलील को नामंजूर कर दिया । न्यायालय, उपर्युक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता नहीं पाता है । चूंकि, इस मामले में, अपीलार्थी, वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में अपने अधिकार साबित करने में असफल रहे, इसलिए, निचले न्यायालय ने व्यादेश मंजूर करने से इनकार कर दिया था । जब अपीलार्थी वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में अपने हक और कब्जा साबित करने में असफल रहे हैं तो वे व्यादेश प्राप्त करने के हकदार नहीं हैं जैसी कि प्रार्थना की गई है । न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई परिस्थितियां नहीं लाई गई हैं जिनसे कि न्यायालय, निचले न्यायालय द्वारा लिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकें । (पैरा 14, 15, 16 और 17)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	2009 (3) के. एल. टी. एस. एन. 50 (केस सं. 53) एस. सी. : **चलम्मा** बनाम **तिलग ;**	5
[2003]	2003 (1) के. एल. टी. एस. एन. 89 (केस सं. 123) : **सरोजनी** बनाम **तनकम्मा ;**	5

[1996] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1290 :
रंगनाथ परमेश्वर पंडितराव माली और एक अन्य बनाम **एकनाथ गजानन कुलकार्म और एक अन्य ;** 5

[1996] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3485 :
चावदेगोवदा उर्फ **दोरजी (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** बनाम **सी. नागराजू और अन्य ;** 5

[1995] ए. आई. आर. 1995 उड़ीसा 59 :
अशोका सा और एक अन्य बनाम **विद्याधर पात्रा और अन्य ;** 13

[1994] ए. आई. आर. 1994 कर्नाटक 247 :
निर्मला और अन्य बनाम **रुग्मणी और अन्य ;** 11

[1993] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1756 :
श्री इनासिओ मार्टिन्स बनाम **नारायण हरि नायक और अन्य ;** 5

[1978] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1557 :
बदरी प्रसाद बनाम **चकबन्दी उप-निदेशक और अन्य ;** 5,11

[1965] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1564 :
भैरो शंकर लेखान्दे और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य ;** 11

[1960] ए. आई. आर. 1960 मद्रास 1 :
मुपुदती पिल्लई बनाम **कृष्णनन्स्वामी पिल्लई ;** 15

[1959] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 31 :
मोरन मार बसेलियास कथोलिकास बनाम **तुकलन पाउलो एविरा और अन्य ।** 12

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2009 की विवाह-विषयक अपील सं. 450.

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 28 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री जी. एस. रघुनाथ, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से श्रीमती के. कुसुमम्, अधिवक्ता

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति पी. डी. राजन ने दिया ।

न्या. राजन – यह अपील, कुटुम्ब न्यायालय, तिरुवनन्तपुरम द्वारा 1997 की मूल याचिका सं. 294 में दिए गए निर्णय के विरुद्ध निर्देशित है । उपर्युक्त मूल याचिका में याचिकादार और प्रत्यर्थी इस अपील में क्रमशः अपीलार्थी और प्रत्यर्थी हैं । कुटुम्ब न्यायालय में उपर्युक्त मूल याचिका प्रास्थिति की घोषणा करने, विक्रय-विलेख को अपास्त करने और स्थायी व्यादेश के लिए फाइल की गई थी ।

2. संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार हैं – अपीलार्थी, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के विधिक उत्तराधिकारी हैं । प्रथम अपीलार्थी का मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ विवाह प्रथागत रीति-रिवाजों के अनुसार तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को हुआ था और उस विवाह से अपीलार्थी सं. 2 से 4 बच्चे उत्पन्न हुए थे । तारीख 17 अप्रैल, 1979 को कोचुरमन् कोचुकुंज की मृत्यु हो गई और उसकी मृत्यु होने तक अपीलार्थी मुत्तथरा ग्राम में याचिका अनुसूचित सम्पत्ति में उसके साथ रह रहे थे । यह कथित है कि प्रत्यर्थी ने वादपत्र अनुसूचित संपत्ति के ऊपर दावा किया और उसने मुस्तफा के पक्ष में विक्रय-विलेख सं. 2487/80 के माध्यम से 6-1/2 सेन्ट्स के लिए एक विक्रय-विलेख निष्पादित किया । उसे ऐसा करने का कोई अधिकार नहीं था और वह विलेख आरम्भतः शून्य है । अपीलार्थी वाद-पत्र अनुसूचित संपत्ति में रह रहे हैं और मृतक के विधिक उत्तराधिकारी होने के नाते वे संपत्ति के पूर्णरूपेण स्वामी हैं । द्वितीय अपीलार्थी ने विभाजन कराने और द्वितीय प्रतिवादी के रूप में प्रत्यर्थी क्योंकि उसने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी होने का दावा किया है, को अभिवाचित कराने के लिए मुंसिफ न्यायालय के समक्ष मूल वाद सं. 517/81 फाइल किया । अपीलार्थियों के अनुसार, इन परिस्थितियों में, इस बात की घोषणा की जानी आवश्यक है कि प्रथम अपीलार्थी, मृतक की पत्नी है और अपीलार्थी सं. 2 से 4 उनके बच्चे हैं । अपीलार्थियों ने विक्रय-विलेख को भी अपास्त करने और प्रत्यर्थी के विरुद्ध व्यादेश जारी करने के लिए भी प्रार्थना की है ।

3. निचले न्यायालय में, प्रत्यर्थी ने एक लिखित कथन फाइल किया जिसमें यह दलील दी है कि अपीलार्थी का मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ कोई संबंध नहीं था किन्तु दूसरी ओर, वह मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी थी । प्रथम अपीलार्थी नानूकुट्टन की पत्नियों में से एक है जो कोवलम में रहती है, अन्य अपीलार्थी उसके बच्चे हैं और उनका मृतक

कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ कोई संबंध नहीं था । मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की मृत्यु के पश्चात्, द्वितीय अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी की संपत्ति में अतिचार किया और विभाजन के लिए एक वाद 1979 की मूल वाद सं. 913 फाइल की । इसके पश्चात्, उसने एक अन्य वाद 1981 की मूल वाद सं. 517/81 फाइल की और दोनों मामलों को मुंसिफ न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । प्रत्यर्थी के अनुसार अपीलार्थियों का वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में कोई अधिकार या कब्जा नहीं है और मूल याचिका प्राग न्याय द्वारा वर्जित था । यह दलील दी गई कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी होने के नाते प्रत्यर्थी में उसकी मृत्यु होने के पश्चात् उसके अधिकार अन्तर्निहित हो गए । उसने जिला कलक्टर से अनुज्ञा लेने के पश्चात् विक्रय-विलेख सं. 2487/1980 निष्पादित की ताकि उससे अर्जित धन से कोचुरमन् कोचुकुंज का उपचार हो सके । उस संपत्ति को मुस्तफ़ा को अन्तरित किया गया था और उसके अनुसार शेष 6-1/2 सेन्ट्स उसके कब्जे में थी । अतएव, उसने याचिका खारिज करने की प्रार्थना की ।

4. विचारण न्यायालय के समक्ष दोनों पक्षकारों ने मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य प्रस्तुत किया । उनके साक्ष्यों में अभि. सा. 1 से 3 और सी. पी. डब्ल्यू. 1 से सी. पी. डब्ल्यू. 3 के मौखिक परिसाक्ष्य और प्रदर्श ए-1 से प्रदर्श ए-11 तथा प्रदर्श बी-1 से प्रदर्श बी-18 के दस्तावेजी साक्ष्य सम्मिलित थे । निचले न्यायालय ने अभिलेख पर के साक्ष्यों का सूक्ष्म परीक्षण करने और तौलने के पश्चात् वाद खारिज कर दिया । इस निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थियों ने यह अपील फाइल की ।

5. अपीलार्थियों के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि निचले न्यायालय का यह निष्कर्ष कि प्रथम अपीलार्थी और मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के बीच विवाह साबित नहीं हुए हैं, अवैध है । उनके अनुसार, इस मामले में प्रस्तुत दस्तावेजों को ध्यान में रखते हुए, निचले न्यायालय को इस बात पर विचार करना चाहिए था कि क्या अपीलार्थियों द्वारा स्थापित मामला संभाव्य है या नहीं । उन्होंने यह भी दलील दी कि यह मत कि वैवाहिक स्थिति के प्रश्न पर समुचित तौर पर अभिवचन नहीं किया और पूर्ववर्ती मामले में विनिश्चय सही नहीं है तथा यह निष्कर्ष कि ईप्सित घोषणा मंजूर नहीं की जा सकती है, उचित नहीं है । विद्वान् काउंसेल के अनुसार, अपीलार्थी प्रथम अपीलार्थी की विवाह की वैधता की घोषणा और विक्रय-विलेख रद्द करने तथा व्यादेश पाने के हकदार हैं । अपीलार्थी के

विद्वान् काउंसेल ने **बदरी प्रसाद** बनाम **चकबन्दी उप-निदेशक और अन्य**[1], **रंगनाथ परमेश्वर पंडितराव माली और एक अन्य** बनाम **एकनाथ गजानन कुलकार्म और एक अन्य**[2], **चावदेगोवदा** उर्फ **दोरजी (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य** बनाम **सी. नागराजू और अन्य**[3], **चलम्मा** बनाम **तिलग**[4], **सरोजनी** बनाम **तनकम्मा**[5], **श्री इनासिओ मार्टिन्स** बनाम **नारायण हरि नायक और अन्य**[6] वाले मामलों में दिए गए विनिश्चय का अवलंब लिया ।

6. प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने उपर्युक्त तर्कों का जोरदार विरोध किया और यह दलील दी कि प्रत्यर्थी मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की वैधतः विवाहित पत्नी है । उनके अनुसार, अपीलार्थी पर-व्यक्ति हैं तथा प्रथम अपीलार्थी और कोचुरमन् कोचुकुंज के बीच कोई वैवाहिक संबंध नहीं था । यह तर्क दिया कि पूर्ववर्ती वाद विभाजन के लिए था और उस वाद में प्रत्यर्थी अभिवाचित था और अपने हिस्से के लिए अपीलार्थियों का दावा मुंसिफ न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और ये दलीलें पूर्ववर्ती वाद में उद्भूत की गईं थीं और इसलिए यह वाद प्राग न्याय के सिद्धांत द्वारा वर्जित है और खारिज किए जाने योग्य हैं । प्रत्यर्थी मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के विधिक उत्तराधिकारी हैं और उसे विक्रय-विलेख के माध्यम से संपत्ति अंतरण करने का अधिकार है और इस न्यायालय के समक्ष ऐसी कोई परिस्थिति नहीं लाई गई है जिससे विक्रय-विलेख अपास्त किया जा सके । यह तर्क दिया गया कि व्यक्ति जिसने संपत्ति क्रय की है, उसे मूल वाद में पक्षकार के रूप में सूचीबद्ध नहीं किया गया था यद्यपि वह एक आवश्यक पक्षकार है और इसलिए, निचले न्यायालय द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने के लिए अपीलार्थियों द्वारा कोई कारण प्रकाश में नहीं लाया गया है ।

7. पूर्वोक्त तर्कों को ध्यान में रखते हुए, विचार के लिए निम्नलिखित मुद्दे उद्भूत हुए हैं :–

---

[1] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1557.
[2] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 1290.
[3] ए. आई. आर. 1996 एस. सी. 3485.
[4] 2009 (3) के. एल. टी. एस. एन. 50 (केस सं. 53) एस. सी.
[5] 2003 (1) के. एल. टी. एस. एन. 89 (केस सं. 123).
[6] ए. आई. आर. 1993 एस. सी. 1756.

(1) क्या प्रथम अपीलार्थी, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की वैधतः विवाहित पत्नी होने की घोषणा पाने की हकदार है, जैसी की प्रार्थना की गई है ?

(2) क्या प्रत्यर्थी द्वारा निष्पादित विक्रय-विलेख सं. 2487/1980 रद्द किए जाने के लिए दायी है ?

(3) क्या अपीलार्थी, प्रत्यर्थी के विरुद्ध व्यादेश पाने के हकदार हैं ? यदि ऐसा है तो क्या विचारण न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री विधि में कायम रखे जाने योग्य है ?

मुद्दा (1)

8. प्रथम अपीलार्थी ने निचले न्यायालय के समक्ष यह घोषणा करने की प्रार्थना की कि वह मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की वैधतः विवाहित पत्नी है । उसका प्रयास घोषणात्मक अनुतोष के द्वारा अपने विवाह को कानूनी मान्यता दे देना है । इस मुद्दे को साबित करने के लिए उसने विचारण न्यायालय के समक्ष स्वयं को साक्षी (अभि. सा. 1) के रूप में परीक्षा की । अभि. सा. 1 के साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज का उसके साथ विवाह तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को हुआ था, इसके पश्चात्, वह याचिका अनुसूचित संपत्ति में तारीख 17 अप्रैल, 1979 को उसकी मृत्यु होने तक उसके साथ रही । उनके विवाह से अपीलार्थी सं. 2 से 4 बच्चे उत्पन्न हुए और वे एक साथ उस संपत्ति में रहते थे । निवास को साबित करने के लिए उसने विचारण न्यायालय के समक्ष राशन कार्ड, प्रदर्श ए-1 और स्वीकृति रजिस्टर उद्धरण की प्रतियां प्रदर्श ए-2 और ए-2(1) प्रस्तुत की । इसके अतिरिक्त, विवाह को साबित करने के लिए उसने के. पी. एम. एस. से एक प्रमाणपत्र प्राप्त किया जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श ए-3 के रूप में चिह्नित किया गया है । विचारण न्यायालय के समक्ष प्रदर्श ए-4 से प्रदर्श ए-11 दस्तावेज भी चिह्नित किए गए । प्रदर्श ए-1 को सचिव, के. पी. एम. एस. द्वारा ही तारीख 18 फरवरी, 1980 को जारी किया गया था जिसने विवाह समारोह में हिस्सा नहीं लिया था और उसे विवाह समारोह के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । यह पाया गया है कि संगठन के. पी. एम. एस. वर्ष 1970 के पश्चात् ही गठित हुआ था और उन साक्षियों में से जिन्होंने अभि. सा. 1 के विवाह समारोह में भाग लिया था, किसी भी साक्षी की कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष परीक्षा नहीं की गई । यद्यपि, अभि. सा. 1 ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि जब उसका विवाह

मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ हुआ था तब विवाह के समय उसकी आयु क्या थी, उस समय उनके समुदाय में कौन सी प्रथा अविभावी थी, विवाह आदि में किन अनुष्ठानों का अनुसरण किया जाता है, के बारे में कोई अभिवाक् नहीं दिया और न ही प्रथम अपीलार्थी द्वारा साबित किया गया । उन व्यक्तियों की शनाख्त जिन्होंने विवाह समारोह में भाग लिया था, भी प्रकट नहीं किए गए न ही उनमें से किसी व्यक्ति की परीक्षा की गई । अभि. सा. 2 और अभि. सा. 3, प्रथम अपीलार्थी की क्रमशः पुत्री और दामाद हैं जिन्होंने अभि. सा. 1 के साक्ष्य का समर्थन किया है किन्तु उन्हें विवाद के बारे में कोई प्रत्यक्ष जानकारी नहीं थी । इस प्रकार, यद्यपि अभि. सा. 1 से अभि. सा. 3 की परीक्षा की गई किन्तु, प्रथम अपीलार्थी के साक्ष्य से यह दर्शित नहीं होता है कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज और प्रथम अपीलार्थी के बीच प्रथागत विवाह तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को सम्पन्न हुआ था ।

9. प्रत्यर्थी, जिसकी सी. पी. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा हुई, ने यह अभिसाक्ष्य दिया कि उसका विवाह कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ तारीख 1 जनवरी, 1960 को हुआ था और क्योंकि उन्हें कोई संतान उत्पन्न नहीं हुई इसलिए उन्होंने "अम्बी" नाम के एक बच्चे को गोद ले लिया था । उसके साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मूल वाद सं. 913/75 जो मुंसिफ न्यायालय तिरुवनन्तपुरम में फाइल किया गया था, में सी. पी. डब्ल्यू. 1 को मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी के रूप में स्वीकार किया गया था किन्तु, प्रथम अपीलार्थी ने इस तथ्य को इस मामले में छिपाया । सी. पी. डब्ल्यू. 1 के अनुसार, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ उसका विवाह होने के पश्चात् वे एक साथ याचिका अनुसूचित संपत्ति में रहने लगे थे । सी. पी. डब्ल्यू. 2 ने यह स्वीकार किया कि उसके पिता ने सी. पी. डब्ल्यू. 1 से ग्राम मुत्तथरा में सर्वे सं. 2651 में 6-1/2 सेन्ट्स भूमि क्रय की थी । सी. पी. डब्ल्यू. 3 ने यह स्वीकार किया कि उसने प्रत्यर्थी से 6-1/2 सेन्ट्स भूमि क्रय की थी । सी. पी. डब्ल्यू. 3 लगभग 40 वर्षों से प्रत्यर्थी और उसके पति कोचुरमन् कोचुकुंज को जानता था । उसके अनुसार, उस समय पर कोचुरमन् कोचुकुंज और सी. पी. डब्ल्यू. 1 एक झोपड़ी में पार्वती पुतेन नदी के किनारे रहते थे और उसके तत्पश्चात् कोचुकुंज द्वारा सरकार से पट्टा प्राप्त किया गया था और उस संपत्ति में से उसने 6-1/2 सेन्ट्स भूमि क्रय की थी और तत्पश्चात् उस संपत्ति को अपनी पुत्री को दान में दे दिया ।

10. अब यह दर्शित होना है कि क्या उपर्युक्त साक्षियों के साक्ष्य स्वीकार किए जाने योग्य हैं । प्रथम अपीलार्थी ने यह दावा किया कि

कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ उसका विवाह तृतीय मीनम 1123 (एम. ई.) को हुआ था । वर्ष 2009 में यह अपील फाइल करते समय वह 72 वर्ष की थी । यदि ऐसा था तो वह वर्ष 1937 में पैदा हुई होगी । वर्ष 2009 में, जब अपील फाइल की गई थी तब एम. ई. सदृश 1184 थी । यदि ऐसा है तो उनका विवाह 1184 एम. ई. के 51 वर्ष पूर्व हुआ होना चाहिए, वह वर्ष 1958 होना चाहिए । किन्तु, सी. पी. डब्ल्यू. 1 का साक्ष्य अभि. सा. 1 के मुकाबले अधिक अधिसंभाव्य पाया जाता है । उसके साक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के साथ उसका विवाह तारीख 1 जनवरी, 1960 को हुआ था और उसके पश्चात् वह अपने मृतक पति के साथ वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में रहती थी । इसे साबित करने के लिए उसने जिला सैनिक वेलफेयर आफिस से प्राप्त पत्र प्रदर्श बी-6 प्रस्तुत किया । प्रदर्श बी-7, एस. एस. एल. सी. प्रमाणपत्र की प्रतिलिपि है । प्रदर्श बी-14, प्रत्यर्थी द्वारा कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार के संबंध में प्राप्त अग्रिम धन के लिए सुबैदा बीवी के पक्ष में प्रत्यर्थी द्वारा जारी प्राप्ति है । प्रदर्श बी-6, मृत्यु प्रमाणपत्र की प्रतिलिपि है । प्रदर्श बी-18, पहचान-पत्र की प्रतिलिपि है । सी. पी. डब्ल्यू. 1 ने सुस्पष्टतः यह कथन किया कि उसने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार खर्चों के लिए संपत्ति विक्रय की थी । हमारे अनुसार, विचारण न्यायालय ने दोनों पक्षों के साक्ष्य का सही तौर पर विश्लेषण किया है और विवादित विवाह के बारे में स्वीकार्य निष्कर्ष पर पहुंचा है । इसलिए, हमारी यह राय है कि अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं कि प्रथम अपीलार्थी, मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी है और अन्य अपीलार्थी उनके बच्चे हैं ।

11. विवाह की वैधता और बच्चों के धर्मजत्व के पक्ष में उपधारणा की जा सकती है यदि पक्षकारों के विवाह के समय से उनके नातेदारों और अन्य व्यक्तियों द्वारा उन्हें पत्नी और पति के रूप में स्वीकार किया जाता है और यदि इसके पश्चात् इसे किसी दस्तावेज में उल्लिखित किया जाता है । यह उपधारणा मात्र तभी लागू हो सकती है जब वैध विवाह के अनुष्ठान की औपचारिक अपेक्षाएं साबित कर दी जाती हैं । उसी समय पर, जब एक स्त्री उस व्यक्ति के संरक्षण में रहती है जो संयुक्त रूप से उसके और उसके बच्चों की जानकारी में उसके साथ रहता है, जिनसे यह मजबूत उपधारणा उद्‌भूत हो सकती है कि वह उस व्यक्ति की पत्नी है । तथापि, विवाह की यह उपधारणा भी तथ्यों के सबूत द्वारा खंडित की जा सकती है, यह दर्शित करते हुए कि उनके बीच कोई विवाह नहीं हुआ है ।

निर्मला और अन्य बनाम **रुग्मणी और अन्य**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि एक वैध विवाह की औपचारिकताएं पूरी करने और प्रथा का पालन करने की उपधारणा भी की जा सकती है और लम्बी अवधि के सहवास से उद्‌भूत विवाह की उपधारणा भी की जा सकती है । यहां अभि. सा. 1 से 3 के साक्ष्य अनुष्ठानों के पालन करने को साबित करने और वैध विवाह की प्रथाओं का समाधान करने के लिए पर्याप्त नहीं है । एक वैध विवाह के पक्ष में उपधारणा करने की परिस्थितियों पर चर्चा माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा **बदरी प्रसाद** बनाम **उप-चकबंदी निदेशक और अन्य**[2] वाले मामले में निम्नलिखित रूप से की गई है :–

> "इस मामले के तथ्यों से यह प्रकट होता है कि लगभग 50 वर्षों से एक व्यक्ति और एक स्त्री पति और पत्नी के रूप में रहते थे । इस विशेष इजाजत याचिका में याची द्वारा दोनों के बीच विवाह के तथ्य को जोखिम भरी चुनौती दी गई थी जिसे उच्च न्यायालय द्वारा नामंजूर कर दिया गया था । विवाह के पक्ष में एक मजबूत उपधारणा उद्‌भूत होती है, जहां साथी (जोड़े) पति-पत्नी के रूप में लम्बी अवधि से एक साथ रहते हैं । यद्यपि उपधारा खंडनीय होती है, फिर भी उस व्यक्ति पर यह साबित करने का अत्यधिक भार होता है जो इस विधिक उत्पत्ति के नातेदारी से इनकार करने की ईप्सा रखता है । विधि, हमेशा ही धर्मजत्व के पक्ष में और जारजता के विरुद्ध उपधारणा करता है ।"

भैरो शंकर लेखान्दे और एक अन्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य**[3] वाले एक अन्य विनिश्चय में भी माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "धारा 494 प्रथमदृष्ट्या अभिव्यक्ति, 'जो कोई .... विवाह' । दंड संहिता में 'जो कोई .... विवाह' से अभिप्राय वैध विवाह से है या 'जो कोई .... विवाह' और जिसका विवाह से अभिप्राय एक वैध विवाह से है । यदि पक्षकारों को लागू विधि के अनुसार विवाह वैध नहीं है तो यह शून्य होने के नाते किसी भी कारण से उस व्यक्ति के पति या पत्नी के जीवन के दौरान विवाह

---

[1] ए. आई. आर. 1994 कर्नाटक 247.

[2] ए. आई. आर. 1978 एस. सी. 1557.

[3] ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 1564.

होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । यदि विवाह, एक वैध विवाह नहीं है तो यह विधि की दृष्टि में विवाह नहीं होता है । मात्र यह तथ्य कि एक पुरुष और एक स्त्री पति-पत्नी के रूप में रहते हैं, साधारणतया किसी भी कीमत पर उन्हें पति या पत्नी की प्रास्थिति नहीं देता है यद्यपि वे स्वयमेव को समाज के समक्ष पति और पत्नी के रूप में प्रस्तुत करते हैं और समाज उन्हें पति और पत्नी के रूप में समझता है ।"

12. माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा सुस्थिर विधि को ध्यान में रखते हुए, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि यदि एक पुरुष और एक स्त्री एक ही छत के नीचे पर्याप्त लम्बे समय से एक साथ रहते हैं तो इससे युक्तियुक्त तौर पर विधिक और विधिमान्य विवाह की उपधारणा उद्भूत होती है और उनके विवाह से उत्पन्न बच्चे उनके धर्मज बच्चे होते हैं । विवाह के बारे में उपधारणा एक खंडनीय उपधारणा होती है और ऐसी उपधारणा को खंडित करने के लिए मजबूत साक्ष्य अपेक्षित होते हैं और विवादित पक्षकार अनन्य रूप से साबित करने के लिए यह साक्ष्य प्रस्तुत कर सकते हैं कि यह वैध विवाह नहीं है और वैध विवाह की संभाव्यता को सकारात्मक साक्ष्य के माध्यम से पूर्णरूपेण इनकार कर दिया जाना चाहिए । जब वैध विवाह नहीं होता है और दोनों पक्षकार अपनी दलीलों के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं तो न्यायालय अपने समक्ष प्रस्तुत साक्ष्यों के आधार पर इस प्रश्न का विनिश्चय करता है । ऐसे मामले में, अपनी दलील को साबित करने का भार एक से दूसरे पर स्थानांतरित होता रहता है जैसा और जब एक पक्षकार दूसरे पक्षकार के विरुद्ध मुद्दे को साबित करता है । **मोरन मार बसेलियास कथोलिकास** बनाम **तुकलन पाउलो एविरा और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि "मामले के अंत में, सबूत के भार का प्रश्न, जब दोनों पक्षकारों ने अपने साक्ष्य प्रस्तुत कर दिए हैं, अत्यधिक महत्वपूर्ण के नहीं हैं तो न्यायालय को सभी सामग्रियों पर विचार करते हुए विनिश्चय करना होता है" । जहां तक इस मामले का संबंध है, अपीलार्थी, प्रथम अपीलार्थी और कोचुरमन् कोचुकुंज के बीच विधिक और विधिमान्य विवाह साबित करने के लिए विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करने में असफल रहे हैं । दूसरी ओर प्रत्यर्थी द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य यह उपधारणा करने के लिए अधिक संभाव्य है कि वह वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में रह रही थी । ऐसी परिस्थितियों में, विचारण न्यायालय यह अभिनिर्धारित करने में न्यायानुमत था कि प्रथम अपीलार्थी

[1] ए. आई. आर. 1959 एस. सी. 31.

अपने वैध विवाह को साबित करने में असफल रही और उसे घोषणात्मक अनुतोष मंजूर करने से इनकार कर दिया ।

13. अपीलार्थी इस न्यायालय के समक्ष घोषणात्मक डिक्री प्राप्त करने के लिए आए थे । विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 के अनुसार, कोई व्यक्ति, जो किसी विधिक हैसियत का या किसी संपत्ति के बारे में किसी अधिकार का हकदार हो, ऐसे किसी व्यक्ति के विरुद्ध, जो ऐसी हैसियत का या ऐसे अधिकार के हक का प्रत्याख्यान करता हो या प्रत्याख्यान करने में हितबद्ध हो, वाद संस्थित कर सकेगा और न्यायालय स्वविवेक में उस वाद में यह घोषणा कर सकेगा । उन परिस्थितियों में, जिनमें विवेकीय घोषणात्मक अनुतोष मंजूर किए जा सकते हैं, वे मामले के विशिष्ट तथ्यों पर निर्भर करते हैं । घोषणात्मक अनुतोष की प्रकृति के बारे में **अशोका सा और एक अन्य** बनाम **विद्याधर पात्रा और अन्य**[1] वाले मामले के विनिश्चय में चर्चा की गई थी जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "पूर्वोक्त विचार करने पर, प्रास्थिति यह है कि मूल घोषणा के लिए वादों को शासित करने वाली विधि, विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 34 (पुराने अधिनियम की धारा 42) में संहिताबद्ध थी । धारा 34 का उद्देश्य वादी के विधिक हैसियत से या संपत्ति में उसके अधिकार से बादल हटाने के लिए स्पष्ट थी । परिस्थितियां, जिनमें घोषणात्मक डिक्री अधिनिर्णीत की जानी चाहिए, वह विवेक की विषयवस्तु होती है जो प्रत्येक मामले के विशिष्ट तथ्यों पर निर्भर करती है । एक पूर्वरूपेण पर-व्यक्ति, जिसका हित किसी अन्य के विधिक हैसियत द्वारा किसी भी प्रकार से प्रभावित नहीं है अथवा जो किसी अन्य की सम्पत्ति में हित नहीं रखता है, वह धारा 34 के अधीन वाद कायम रखने का हकदार नहीं होता है ।"

यहां, यद्यपि प्रथम अपीलार्थी ने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज की पत्नी होने का दावा किया है किन्तु उसने अपने प्रथागत विवाह के अनुष्ठान को साबित करने के लिए कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है । विवाह के संबंध में, शब्द 'अनुष्ठान' से अभिप्राय है, समुचित समारोह और सम्यक् प्ररूप में विवाह संपन्न होना । इसलिए, जब तक कि विवाह समुचित समारोह में संपन्न नहीं होता या पूरा नहीं होता तब तक इसे विवाह अनुष्ठान होना नहीं

---

[1] ए. आई. आर. 1995 उड़ीसा 59.

कहा जा सकता है । जब प्रथम अपीलार्थी विवादित तथ्यों में अपने विधिक हैसियत को साबित करने में असफल रही तो वह घोषणात्मक डिक्री पाने के लिए हकदार नहीं रही, जैसा कि उसने दावा किया है । एक पर-व्यक्ति या एक बाहरी व्यक्ति जो किसी संपत्ति में कोई विधिक हैसियत या अधिकार किसी भी तरीके से नहीं रखता है वह उस संपत्ति में हक रखने वाले या कब्जा रखने वाले व्यक्ति के विरुद्ध धारा 34 के अधीन घोषणा के लिए वाद संस्थित करने का हकदार नहीं होता है । विचारण न्यायालय ने इस पहलू पर विचार किया और ईप्सित घोषणा मंजूर करने से इनकार कर दिया । हम, निचले न्यायालय द्वारा निकाले गए इस निष्कर्ष में कोई अवैधता नहीं पाते हैं ।

मुद्दा सं. 2 और 3

14. इस परिप्रेक्ष्य में, हम यह विचार करते हैं कि क्या विक्रय-विलेख सं. 2487/80 अकृत और शून्य है तथा यह अपास्त किए जाने योग्य है । जब कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध एक लिखत शून्य या शून्यकरणीय होता है और जिसको यह युक्तियुक्त आशंका होती है कि ऐसा लिखत यदि यथास्थिति छोड़ दी गई तो वह उसे गंभीर क्षति कारित कर सकती है जिससे वाद का न्यायनिर्णयन शून्य या शून्यकरणीय हो सकता है । ऐसी स्थिति में, न्यायालय को यह न्यायनिर्णयन करने का विवेकाधिकार हो जाता है तथा वह आदेश दे सकता है और रद्द कर सकता है । यह स्वीकृत तथ्य है कि वादपत्र अनुसूचित सम्पत्ति 12-1/2 सेन्ट्स थी और प्रत्यर्थी ने उसका एक भाग सी. पी. डब्ल्यू. 3 को विक्रय कर दिया था । सी. पी. डब्ल्यू. 1 के अनुसार वह वादपत्र अनुसूचित सम्पत्ति में रह रही है और उसने मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार खर्चों के लिए सम्पत्ति में से 6-1/2 सेन्ट्स सी. पी. डब्ल्यू. 3 को विक्रय कर दिया था । व्यादेश के लिए एक पूर्ववर्ती वाद फाइल किया गया था जिसे निर्णय प्रदर्श पी-4 द्वारा खारिज कर दिया गया था । प्रदर्श बी-1 और प्रदर्श बी-2 विक्रय-विलेख हैं, प्रदर्श बी-3 और प्रदर्श बी-4, मूल वाद सं. 517/81 और अपील वाद सं. 368/88 में दिए गए निर्णयों की प्रतियां हैं । प्रदर्श बी-9 डिक्री की प्रमाणित प्रति है और प्रदर्श बी-10 मूल वाद 913/97 में निर्णय की प्रमाणित प्रति है । प्रदर्श बी-14, कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार के बारे में उसके द्वारा प्राप्त अग्रिम राशि के लिए प्रत्यर्थी द्वारा सुबैदा बीवी को जारी प्राप्ति है । प्रदर्श बी-16 मृत्यु प्रमाणपत्र की प्रति है और प्रदर्श बी-18 पहचान-पत्र की प्रति है । साक्ष्य में प्रस्तुत उपर्युक्त दस्तावेजों के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी यह साबित करने में असफल रहे हैं

कि उनका विवादित वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में कोई अधिकार है । प्रदर्श बी-1 से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी ने जिला कलक्टर की मंजूरी प्राप्त करने के पश्चात् मृतक कोचुरमन् कोचुकुंज के उपचार के लिए विक्रय-विलेख सं. 2487/1980 द्वारा संपत्ति विक्रय की थी ।

15. इसलिए, लिखत के रद्द होने की दशा में प्रथम अपीलार्थी को यह सिद्ध करना है कि हक स्वयं उसके पक्ष में है और यदि इसे रद्द नहीं किया जाता है तो प्रत्यर्थी द्वारा इसका उपयोग उसे तंग करने के लिए किया जा सकता है । विचारण न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि अपीलार्थियों का वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है । साक्ष्य के परिशीलन से यह दर्शित होता है कि अपीलार्थी अभिकथित विवादित संपत्ति में अपने अधिकार साबित करने में असफल रहे हैं और ऐसी स्थिति में निचले न्यायालय ने सही ही लिखत रद्द करने से इनकार किया है । इस संदर्भ में, हम, **मुपुदती पिल्लई** बनाम **कृष्णनन्स्वामी पिल्लई**[1] वाले मामले में मद्रास उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट कर सकते हैं, जिसमें निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

> "अधिनियम, 1963 की धारा 31 के तत्समान् पुराने अधिनियम की धारा 39 के उपबंधों से यह स्पष्ट होता है कि लिखत रद्द करने की अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए निम्नलिखित तीन शर्तें अपेक्षित हैं –
>
> (1) लिखत, वादी के विरुद्ध शून्य या शून्यकरणीय है ।
>
> (2) वादी को यह युक्तियुक्त आशंका हो कि ऐसी लिखत यदि विद्यमान छोड़ दी गई तो वह उसे गंभीर क्षति कारित कर सकती है ।
>
> (3) मामले की परिस्थितियों में, न्यायालय को निवारक न्याय के इस अनुतोष को मंजूर करने के लिए समुचित तौर पर विचार करना चाहिए ।"

16. इस निर्णय को देने के पूर्व, हम यह मत व्यक्त करते हैं कि प्रत्यर्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि वाद, "प्राग न्याय" के सिद्धांत द्वारा वर्जित है । द्वितीय अपीलार्थी ने वादपत्र अनुसूचित संपत्ति का विभाजन करने के लिए मुंसिफ न्यायालय, तिरुवनन्तपुरम के समक्ष मूल

---

[1] ए. आई. आर. 1960 मद्रास 1.

वाद सं. 913/79 फाइल की थी और निचले न्यायालय द्वारा वाद खारिज कर दिया गया था क्योंकि उस पर जोर नहीं दिया गया था । व्यादेश की ईप्सा करते हुए, पुनः मूल वाद सं. 517/1981 फाइल की गई और उस वाद को भी खारिज कर दिया गया था जिसके विरुद्ध उसने पुनः एक अपील फाइल की जिसे भी अपील न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था । निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि पूर्ववर्ती वाद और अपील में पक्षकारों की प्रास्थिति के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था और इसलिए, प्राग न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होता है । यह स्पष्ट है कि वैवाहिक प्रास्थिति का प्रश्न पूर्ववर्ती वाद में विवाद्यक के रूप में विनिर्दिष्टतः अभिवाचित नहीं किया गया था और उस मुद्दे पर कोई विनिश्चय नहीं किया गया था । प्राग न्याय का सिद्धांत उसी वाद या विवाद्यक में लागू होता है जिसमें विषयवस्तु प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्यक होता है और उन्हीं पक्षकारों के बीच या उसी हक के अधीन मुकदमा लड़ने वाले पक्षकारों के बीच पूर्ववर्ती वाद में प्रत्यक्षतः और सारतः विवाद्य रहा हो । द्वितीय अपीलार्थी द्वारा पूर्ववर्ती वादों को विभाजन और व्यादेश के लिए मुंसिफ न्यायालय, तिरुवनन्तपुरम में फाइल किए गए थे । निचले न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि उपर्युक्त वादों में पक्षकारों की प्रास्थिति के बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला गया था और दोनों वादों में पक्षकार भिन्न थे । इन मताभिव्यक्तियों के आधार पर, कुटुम्ब न्यायालय ने बिना कोई विवाद्यक विरचित किए प्राग न्याय के संबंध में दलील को नामंजूर कर दिया । हम, उपर्युक्त निष्कर्ष में कोई अवैधता नहीं पाते हैं ।

17. चूंकि, इस मामले में, अपीलार्थी, वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में अपने अधिकार साबित करने में असफल रहे, इसलिए, निचले न्यायालय ने व्यादेश मंजूर करने से इनकार कर दिया था । जब अपीलार्थी वादपत्र अनुसूचित संपत्ति में अपने हक और कब्जा साबित करने में असफल रहे हैं तो वे व्यादेश प्राप्त करने के हकदार नहीं हैं जैसी कि प्रार्थना की गई है । हमारे समक्ष ऐसी कोई परिस्थितियां नहीं लाई गई हैं जिनसे कि हम निचले न्यायालय द्वारा लिखित निष्कर्षों में हस्तक्षेप कर सकें ।

परिणामतः, निचले न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री की पुष्टि की जाती है । तद्नुसार, अपील खारिज की जाती है । पक्षकार क्रमशः अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

अपील खारिज की गई ।

क.

मोहम्मद हारेन अहमद और अन्य

बनाम

असम राज्य और अन्य

तारीख 6 मई, 2014

न्यायमूर्ति ऋषिकेश राय

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 93 और 117 [सपठित असम मोटर यान नियम, 2003 – नियम 73, 93 (4) और 94] – बसों को रोकने और खड़ा करने के लिए अनुज्ञप्ति की अपेक्षा – विहित फीस लेकर विनिर्दिष्ट स्थान पर यात्री पटल (टिकट खिड़की) खोलने के लिए रसीद जारी की जानी – ऐसी रसीद के आधार पर ऐसे स्थान पर बसों को रोकने और खड़ा करने के लिए अनुज्ञा प्रदान करना नहीं माना जा सकता ।

रिट याची नगर के बीचो-बीच घनी आबादी में बस अड्डा बनाकर बसों का संचालन कर रहे थे । उपखंड मजिस्ट्रेट ने विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् दबोका नगर में बसें खड़ी करने से निवारित कर दिया । अतः रिट याचियों ने समानता के आधार पर दावा करते हुए वर्तमान सिविल रिट याचिकाएं फाइल कीं । रिट याचिकाएं मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – असम मोटर यान नियम, 2003 यह अपेक्षा करते हैं कि सरकार यानों को खड़ा करने, यात्री यानों को रोकने के लिए परमिट जारी करेगी और सभी अनुज्ञात पार्किंग स्थानों के लिए मोटर यान नियम 93 के उपनियम (4) के अधीन विनिर्दिष्ट सुविधाओं को प्रदान करने की अपेक्षा करेगी । यानों को अड्डे पर रोकने और खड़ा करने के लिए व्यवस्था करने का तथ्य नियम 94 के अधीन उपबंधित किया गया है और इसलिए स्थानीय प्राधिकारी किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र के ऊपर अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए विनिर्दिष्ट क्षेत्र में सफाई इत्यादि बनाए रखने के लिए निदेश देने के लिए सशक्त है । क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी नियम 73 के अधीन स्थानीय प्राधिकारी की सलाह से बसों को खड़ा करने के लिए किसी क्षेत्र के उपयोग को अनुज्ञात करने के लिए सक्षम है और साथ ही साथ बसों को रोकने और यात्रियों द्वारा उन पर चढ़ने को अनुज्ञात करने के लिए निदेश देने हेतु सक्षम है और किसी विनिर्दिष्ट स्थान पर बसों को खड़ा

करने/उस क्षेत्र में बसों पर चढ़ने के लिए कतिपय घोषणाएं करने के लिए भी सशक्त है । तथापि, वर्तमान मामले में यह उल्लेखनीय है कि दबोका नगर समिति ने कभी भी मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को बसों के संचालन के लिए और बस अड्डा बनाने के लिए कोई अनुज्ञप्ति जारी नहीं की । तथ्यतः मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को जारी की गई धनीय रसीद से यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 8 को यात्रा पटल बनाने के लिए समर्थ बनाने हेतु उससे फीस का संग्रहण किया गया था । तथापि, किसी यात्रा पटल के लिए अनुज्ञा के आधार पर प्रत्यर्थी सं. 8 सड़क के आसपास की भूमि पर अतिक्रमण करते हुए बस अड्डे का उपयोग कर रहा है और यह बात निश्चित रूप से विधिक रूप से अनुज्ञेय नहीं है । जहां तक उपखण्ड अधिकारी, होजई द्वारा तारीख 30 सितंबर, 1991 को प्रत्यर्थी सं. 8 को मंजूर की गई अनुज्ञा का संबंध है, स्वतः आदेश में यह स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 8 न तो विनिर्दिष्ट क्षेत्र के बाहर यान खड़ा कर सकता है और न ही वह सड़क के आसपास की भूमि पर अप्राधिकृत रूप से अतिक्रमण करेगा और न ही यातायात के संचालन में बाधा उत्पन्न करेगा । तथापि, उपलब्ध दस्तावेजों से यह स्पष्टतः उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 8 ने न केवल विनिर्दिष्ट क्षेत्र के बाहर अपनी बसें खड़ी कीं अपितु उसने सड़क के आसपास की भूमि और सरकारी भूमि पर भी अतिक्रमण किया । ऐसा निश्चित रूप से तारीख 30 सितंबर, 1991 को जारी की गई अनुज्ञप्ति में प्राधिकृत नहीं किया गया था । इसके अलावा पिछले 24 वर्षों से यातायात में अत्यधिक वृद्धि हो गई है और इसलिए उपखण्ड अधिकारी की पुरानी अनुज्ञा की आज की वास्तविकताओं में सुसंगतता नहीं रह गई है । चूंकि स्वीकृततः प्रत्यर्थी सं. 8 को मोटर यान नियम, 2003 के नियम 73, 93 और 94 के अधीन कोई अनुज्ञा जारी नहीं की गई थी और न ही उसे मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 93 और 117 के अधीन कोई अनुज्ञप्ति या अनुमति मंजूर की गई थी इसलिए न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रत्यर्थी मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को दबोका नगर क्षेत्र के भीतर अपनी बसें खड़ी करने और संचालन करने के लिए अनुज्ञप्त नहीं किया जाना चाहिए और उसे अपना संचालन उस क्षेत्र पर स्थानांतरित कर देना चाहिए जैसा कि उपखंड मजिस्ट्रेट ने तारीख 15 सितंबर, 2007 के अपने आदेश में उल्लिखित किया था । जहां तक मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स से नगर क्षेत्र समिति द्वारा संगृहीत की गई नाम मात्र की फीस का संबंध है, यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 8 केवल टिकट खिड़की खोल सकता है क्योंकि व्यापार अनुज्ञप्ति उसे दबोका नगर क्षेत्र से बस सेवा

संचालित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करती । परिणामतः राज्य प्राधिकारियों तथा दबोका नगर समिति को यह निदेश दिया जाता है कि वे यह सुनिश्चित करें कि क्या उपखण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 15 जुलाई, 2007 को जारी प्रतिषेध आदेश समान रूप से किसी विभेद के बिना सभी बस संचालकों को लागू किए गए हैं । इस निदेश के साथ खर्चों के लिए कोई आदेश किए बिना दोनों याचिकाएं मंजूर की जाती हैं । (पैरा 12, 13, 14, 15, 16 और 17)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2009 की सिविल रिट याचिका सं. 1023 और 2007 की रिट याचिका सं. 2478.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याचियों की ओर से सर्वश्री एस. सी. विश्वास, एस. दास, डी. दत्त, आर. रंगमई और बी. डी. कंवर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री यू. आर. सैकिया, जे. हांडिक और बी. ताल्लुकदार

न्यायमूर्ति ऋषिकेश राय – 2009 की रिट याचिका (सिविल) सं. 1023 में याचियों के विद्वान् काउंसेल श्री बी. डी. कंवर को सुना । 2007 की रिट याचिका (सिविल) सं. 2478 में याची का प्रतिनिधित्व श्री एस. सी. विश्वास, अधिवक्ता द्वारा किया गया । मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स (प्रत्यर्थी सं. 8) का प्रतिनिधित्व विद्वान् काउंसेल श्री बी. ताल्लुकदार द्वारा किया गया । सरकारी प्रत्यर्थियों की ओर से विद्वान् सरकारी अधिवक्ता श्री जे. हांडिक उपस्थित हुए तथा परिवहन आयुक्त का प्रतिनिधित्व परिवहन विभाग के स्थायी काउंसेल द्वारा किया गया ।

2. यह मामला यातायात के घनत्व और असुविधा से संबंधित है जो प्रत्यर्थी प्रिया ट्रैवल्स द्वारा बसों को खड़ा करने से हुआ है और इसलिए याचियों ने यह दलील दी है कि प्राइवेट प्रत्यर्थी व्यापार करने की कोई अनुज्ञप्ति के लिए या विधिक प्राधिकार के बिना दबोका नगर के बीचो-बीच बस अड्डा बनाकर बसों का परिचालन कर रहा है ।

3. उपखण्ड अधिकारी, होजई ने तारीख 30 सितंबर, 1991 को भू-स्वामियों की सहमति से मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को दबोका-दिफू रोड पर 2

कट्‌ठा 10 लैचा भूमि का उपयोग करने के लिए अनुज्ञात किया था । तथापि, यह विनिर्दिष्ट किया गया था कि बसें विनिर्दिष्ट भूमि के बाहर खड़ी नहीं की जाएंगी और यान सरकारी भूमि पर खड़े नहीं किए जाएंगे और बाधा उत्पन्न नहीं की जाएगी । तथापि, प्रत्यर्थी सं. 8 ने सशर्त अनुमति का भंग करते हुए भूमि को वाणिज्यिक क्षेत्र के रूप में विकसित किया और सड़क के दोनों ओर और सरकारी भूमि के निकट 20-30 बसें खड़ी करना आरंभ कर दिया । परिणामतः दबोका नगर के व्यथित व्यक्तियों ने उपखण्ड अधिकारी (सिविल), होजई को शिकायत की तथा दबोका नगर समिति को भी यह शिकायत की कि दबोका नगर की सड़क के घने क्षेत्र पर बस आपरेटर द्वारा बस खड़ी करके उत्पात उत्पन्न किया जा रहा है ।

4. दबोका नगर समिति ने लोक शिकायत पर कार्रवाई करते हुए तारीख 9 मार्च 2007 को यह संकल्पित किया कि मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को बसों को विनिर्दिष्ट प्राइवेट भूमि के भीतर खड़ा करने और सड़क के आसपास के प्रतिषिद्ध क्षेत्र का उपयोग करने से प्रत्यर्थी सं. 8 को निर्बंधित किया जाए । नगर समिति ने संबंधित क्षेत्र में वाहन खड़ा न करने को क्रियान्वित करने के लिए भी संकल्प पारित किया और यह भी संकल्पित किया कि दबोका नगर समिति की अनुमति के बिना कोई बस अड्‌डा संचालित करना अनुज्ञात नहीं किया जाएगा ।

5. क्षेत्राधिकारी, दबोका ने अपनी तारीख 26 फरवरी 2007 की रिपोर्ट में वर्ष 1991-92 के पूर्व के समय जब प्रत्यर्थी सं. 8 को अनुज्ञा प्रदान की गई थी, और वर्तमान नगर की परिस्थिति की तुलना की और नगर क्षेत्र में स्थानीय यातायात के बढ़ने पर विचार करते हुए परिवहन संचालकों को नगर से दूर बस अड्‌डा स्थानांतरित करने की सिफारिश की ।

6. उपखण्ड मजिस्ट्रेट, होजई ने क्षेत्राधिकारी की सिफारिश पर कार्रवाई करते हुए लोक हित में अपने तारीख 28 मार्च, 2007 के आदेश द्वारा राष्ट्रीय राजमार्ग 36 और राष्ट्रीय राजमार्ग 54 को बसें खड़ी न करने वाले क्षेत्रों के रूप में विनिर्दिष्ट किया और मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को अपने बस अड्‌डे के लिए नया स्थान तलाश करने का आदेश दिया । किन्तु चूंकि तब तक मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स द्वारा नगर क्षेत्र के बाहर अपनी बसें खड़ी करने के लिए लिखित आश्वासन दिया जा चुका था इसलिए उपखण्ड मजिस्ट्रेट, होजई ने अपने तारीख 11 अप्रैल, 2007 के आदेश द्वारा अस्थाई रूप से प्रत्यर्थी को 2 कट्‌ठा 10 लैचा माप की अपनी प्राइवेट भूमि से तारीख 15

अप्रैल, 2007 तक अपनी बसें चलाने के लिए अनुज्ञात किया । तथापि, यह विनिर्दिष्ट किया गया था कि विनिर्दिष्ट तारीख के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 8 दबोका नगर में अपने बस अड्डे से बसों का संचालन नहीं कर सकेगा ।

7. प्रत्यर्थी सं. 8 ने उपखण्ड मजिस्ट्रेट, होजई के उक्त आदेश को सेशन न्यायाधीश, नगांव के समक्ष आक्षेपित किया और विद्वान् न्यायालय ने तारीख 23 मई, 2007 के निर्णय द्वारा इस आधार पर उपखण्ड मजिस्ट्रेट के आदेश को अभिखंडित कर दिया कि प्रभावित पक्षकार को सुनवाई का अवसर नहीं दिया गया था । इसके पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 8 को तारीख 14 जून, 2007 को कारण बताओ सूचना जारी की गई थी और सूचना के जवाब पर विचार करने के पश्चात् उपखण्ड मजिस्ट्रेट, होजई ने यह विनिर्दिष्ट करते हुए तारीख 15 मार्च, 2008 को एक व्यादेश जारी किया कि अतिक्रमित सड़क के आसपास के क्षेत्र में बसें खड़ी करने का कोई स्थान नहीं बनाया जाएगा । यह भी विनिर्दिष्ट किया गया था कि व्यापार अनुज्ञप्ति के बिना और पुलिस प्राधिकारियों से सम्यक् अनुज्ञा लिए बिना दबोका नगर क्षेत्र के भीतर बसों का संचालन अनुज्ञात नहीं किया जाएगा ।

8. विद्वान् काउंसेल श्री बी. डी. कंवर ने यह दलील दी कि घने व नगर क्षेत्र के बीचो-बीच ऐसा कोई बस अड्डा नहीं बनाया जाना चाहिए जिससे कि नगर निवासियों को अत्यधिक असुविधा हो । इसके अतिरिक्त चूंकि प्रत्यर्थी सं. 8 को केवल परिसीमित क्षेत्र उपलब्ध है इसलिए वह अपनी बसों द्वारा यात्रा करने वाले यात्रियों को कहीं ले जाने के लिए कोई सुविधा प्रदान करने में असमर्थ है । उपखण्ड मजिस्ट्रेट और दबोका नगर समिति की कार्रवाई का समर्थन करते हुए श्री कंवर ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी सं. 8 की ज्यादातर बसें सड़क के आसपास खड़ी होती हैं और उसके पास बसें चलाने के लिए कोई व्यापार अनुज्ञप्ति नहीं है और इसलिए बस अड्डे के घने नगर क्षेत्र के बाहर किसी उचित स्थान की तलाश की जानी चाहिए ।

9. श्री बी. ताल्लुकदार ने प्रत्यर्थी सं. 8 का प्रतिनिधित्व करते हुए प्रथमतः यह दलील दी कि 2/3 अन्य ऐसे बस संचालक भी हैं जो दबोका नगर क्षेत्र के भीतर अपनी बसें खड़ी कर रहे हैं । काउंसेल ने कार्बी आंगलोंग बस अड्डा, नगांव बस अड्डा और होजई-लंका बस अड्डे का निर्देश किया है जो प्रत्यर्थी सं. 1 के बस अड्डे के पास ही हैं । काउंसेल ने यह भी दलील दी कि मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को दबोका नगर समिति द्वारा

अनुज्ञप्ति दी गई थी और तद्नुसार प्रत्यर्थी सं. 8 ने यह दावा किया कि वह दबोका नगर समिति के सम्यक् प्राधिकार के साथ बस अड्डे का उपयोग कर रहा है ।

10. इसके प्रतिकूल सरकारी अधिवक्ता ने यह दलील दी कि जब तक कि प्रत्यर्थी सं. 8 मोटर यान अधिनियम (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 93 के अधीन कोई अभिकर्ता अनुज्ञप्ति प्राप्त नहीं कर लेता और धारा 117 के अधीन सुरक्षित बस पार्किंग की अनुज्ञप्ति प्राप्त नहीं कर लेता, उसे बस संचालक के रूप में घने क्षेत्र में अनेक बसें खड़ी करके अतिक्रमण करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता ।

11. श्री एस. सी. विश्वास, अधिवक्ता ने दबोका नगर समिति का प्रतिनिधित्व करते हुए यह दलील दी कि स्थानीय प्राधिकारी ने सभी बस संचालकों को बसें खड़ी करने के लिए प्रतिषिद्ध करने की प्रस्थापना की थी और इसलिए प्रत्यर्थी सं. 8 ऐसा एकमात्र अभिकर्ता नहीं है जिसे नगर के बाहर अपना बस अड्डा स्थानांतरित करने के लिए कहा गया है । श्री विश्वास ने यह साबित करने के लिए तारीख 9 मार्च, 2007 के नगर समिति के संकल्प का निर्देश किया है जिसमें दबोका-दिफू रोड के साथ नगर पुलिस थाने से 100 मीटर की दूरी तक बसें न खड़ी करने का विनिर्देश है और क्रमशः नगांव-लंका रोड क्रमशः राष्ट्रीय राजमार्ग सं. 36 और 54 के अन्तर्गत आता है और इसलिए स्थानीय प्राधिकारी द्वारा यह निर्बंधन लगाया गया था कि बसों को सड़क के आसपास की भूमि पर खड़ा करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जाएगा क्योंकि यह सरकारी आरक्षित भूमि है ।

12. असम मोटर यान नियम, 2003 (जिसे आगे संक्षेप में "मोटर यान नियम" कहा गया है), यह अपेक्षा करते हैं कि सरकार यानों को खड़ा करने, यात्री यानों को रोकने के लिए परमिट जारी करेगी और सभी अनुज्ञात पार्किंग स्थानों के लिए मोटर यान नियम 93 के उपनियम (4) के अधीन विनिर्दिष्ट सुविधाओं को प्रदान करने की अपेक्षा करेगी । यानों को अड्डे पर रोकने और खड़ा करने के लिए व्यवस्था करने का तथ्य नियम 94 के अधीन उपबंधित किया गया है और इसलिए स्थानीय प्राधिकारी किसी विनिर्दिष्ट क्षेत्र के ऊपर अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए विनिर्दिष्ट क्षेत्र में सफाई इत्यादि बनाए रखने के लिए निदेश देने के लिए सशक्त है । क्षेत्रीय परिवहन प्राधिकारी नियम 73 के अधीन स्थानीय

प्राधिकारी की सलाह से बसों को खड़ा करने के लिए किसी क्षेत्र के उपयोग को अनुज्ञात करने के लिए सक्षम है और साथ ही साथ बसों को रोकने और यात्रियों द्वारा उन पर चढ़ने को अनुज्ञात करने के लिए निदेश देने हेतु सक्षम है और किसी विनिर्दिष्ट स्थान पर बसों को खड़ा करने/उस क्षेत्र में बसों पर चढ़ने के लिए कतिपय घोषणाएं करने के लिए भी सशक्त है ।

13. तथापि, वर्तमान मामले में यह उल्लेखनीय है कि दबोका नगर समिति ने कभी भी मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को बसों के संचालन के लिए और बस अड्डा बनाने के लिए कोई अनुज्ञप्ति जारी नहीं की । तथ्यतः मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को जारी की गई धनीय रसीद से यह उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 8 को यात्रा पटल बनाने के लिए समर्थ बनाने हेतु उससे फीस का संग्रहण किया गया था । तथापि, किसी यात्रा पटल के लिए अनुज्ञा के आधार पर प्रत्यर्थी सं. 8 सड़क के आसपास की भूमि पर अतिक्रमण करते हुए बस अड्डे का उपयोग कर रहा है और यह बात निश्चित रूप से विधिक रूप से अनुज्ञेय नहीं है ।

14. जहां तक उपखण्ड अधिकारी, होजई द्वारा तारीख 30 सितंबर, 1991 को प्रत्यर्थी सं. 8 को मंजूर की गई अनुज्ञा का संबंध है, स्वतः आदेश में यह स्पष्ट रूप से विनिर्दिष्ट किया गया था कि प्रत्यर्थी सं. 8 न तो विनिर्दिष्ट क्षेत्र के बाहर यान खड़ा कर सकता है और न ही वह सड़क के आसपास की भूमि पर अप्राधिकृत रूप से अतिक्रमण करेगा और न ही यातायात के संचालन में बाधा उत्पन्न करेगा । तथापि, उपलब्ध दस्तावेजों से यह स्पष्टतः उपदर्शित होता है कि प्रत्यर्थी सं. 8 ने न केवल विनिर्दिष्ट क्षेत्र के बाहर अपनी बसें खड़ी कीं अपितु उसने सड़क के आसपास की भूमि और सरकारी भूमि पर भी अतिक्रमण किया । ऐसा निश्चित रूप से तारीख 30 सितंबर, 1991 को जारी की गई अनुज्ञप्ति में प्राधिकृत नहीं किया गया था । इसके अलावा पिछले 24 वर्षों से यातायात में अत्यधिक वृद्धि हो गई है और इसलिए उपखण्ड अधिकारी की पुरानी अनुज्ञा की आज की वास्तविकताओं में सुसंगतता नहीं रह गई है ।

15. चूंकि स्वीकृततः प्रत्यर्थी सं. 8 को मोटर यान नियम, 2003 के नियम 73, 93 और 94 के अधीन कोई अनुज्ञा जारी नहीं की गई थी और न ही उसे मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 93 और 117 के अधीन कोई अनुज्ञप्ति या अनुमति मंजूर की गई थी इसलिए मेरा यह सुविचारित

मत है कि प्रत्यर्थी मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स को दबोका नगर क्षेत्र के भीतर अपनी बसें खड़ी करने और संचालन करने के लिए अनुज्ञप्त नहीं किया जाना चाहिए और उसे अपना संचालन उस क्षेत्र पर स्थानांतरित कर देना चाहिए जैसा कि उपखंड मजिस्ट्रेट ने तारीख 15 सितंबर, 2007 के अपने आदेश में उल्लिखित किया था ।

16. जहां तक मैसर्स प्रिया ट्रैवल्स से नगर क्षेत्र समिति द्वारा संगृहीत की गई नाम मात्र की फीस का संबंध है, यह स्पष्ट किया जाता है कि प्रत्यर्थी सं. 8 केवल टिकट खिड़की खोल सकता है क्योंकि व्यापार अनुज्ञप्ति उसे दबोका नगर क्षेत्र से बस सेवा संचालित करने के लिए प्राधिकृत नहीं करती ।

17. परिणामतः राज्य प्राधिकारियों तथा दबोका नगर समिति को यह निदेश दिया जाता है कि वे यह सुनिश्चित करें कि क्या उपखण्ड मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 15 जुलाई, 2007 को जारी प्रतिषेध आदेश समान रूप से किसी विभेद के बिना सभी बस संचालकों को लागू किए गए हैं । इस निदेश के साथ खर्चों के लिए कोई आदेश किए बिना दोनों याचिकाएं मंजूर की जाती हैं ।

18. इस आदेश की एक प्रति विद्वान् सरकारी अधिवक्ता श्री जे. हांडिक, स्थायी काउंसेल श्री यू. आर. सैकिया, परिवहन विभाग और दबोका नगर समिति की ओर से उपस्थित विद्वान् अधिवक्ता श्री एस. सी. विश्वास को देकर आदेश का अनुपालन सुनिश्चित किया जाए ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मह.

प्रमोद कुमार

बनाम

बिहार राज्य और अन्य

तारीख 14 मार्च, 2014

न्यायमूर्ति मिहिर कुमार झा

न्यायालय अवमान अधिनियम, 1971 (1971 का 70) – धारा 12 [सपठित संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226] – उच्च न्यायालय के आदेश के अनुपालन में देरी – अवमानना आवेदन – उत्तरवर्ती आवेदनों के कारण संवर्धन और परिस्थितियों में परिवर्तन – संवर्धनों के आधार पर आवेदन निष्फल हो जाने के कारण अवमानना कार्यवाही करना उचित नहीं है ।

इस मामले के एक मात्र आवेदक ने तारीख 13 दिसम्बर, 2009 को 2008 की एम. जे. सी. सं. 1750 और उसके समरूप मामलों में दिए गए निदेश का जानबूझकर उल्लंघन करने के कारण विरोधी पक्षकार के विरुद्ध अवमानना की प्रक्रिया आरंभ करने के लिए अनुरोध किया है । आवेदन का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – वस्तुतः, आयोग द्वारा तारीख 5 मई, 2012 को परिणाम प्रकाशित करने के पश्चात् इस न्यायालय ने, अंतरिम आदेश द्वारा आयोग और सरकार पर घोषित सफल व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए सिफारिश करने या उनकी नियुक्तियां करने के लिए रोक लगाई थी । यह नहीं कहा जा सकता कि विरोधी पक्षकारों की ओर से जानबूझकर कमियों या चूकों के कारण वे अवमानना की प्रक्रिया आरंभ करने के लिए दायित्वाधीन हैं । यह सत्य है कि न तो समय-सीमा के भीतर साक्षात्कार लिया गया और न ही परिणाम प्रकाशित हुआ था किन्तु विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के पश्चात् मामला तारीख 23 दिसम्बर, 2009 के खंड न्यायपीठ को और तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय के लिए भेजा गया था और जब एक बार मामला अंतिमता को पहुंच गया, साक्षात्कार आयोजित किया गया था और परिणाम तारीख 9 मई, 2012 को प्रकाशित किया गया था । इसे दृष्टिगत करते हुए, यह अवमानना आवेदन उत्तरवर्ती संवर्धनों के कारण निष्फल हो

गया है और तद्नुसार इसका निपटान किया जाता है । (पैरा 4, 6 और 7)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2012]	2012 सी. डब्ल्यू. जे. सी. 10337 : **अशोक कुमार और अन्य ;**	5
[2012]	2012 सी. डब्ल्यू. जे. सी. 706 : **जवाहर लाल सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य ।**	5

आरंभिक (सिविल) प्रकीर्ण रिट अधिकारिता : 2010 का सिविल प्रकीर्ण मामला सं. 13394.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल प्रकीर्ण आवेदन ।

आवेदक की ओर से श्री बिनोद कुमार बरियार

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री ललित किशोर और डी. के. सिन्हा

न्यायमूर्ति मिहिर कुमार झा – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना गया ।

2. इस मामले के एक मात्र आवेदक ने तारीख 13 दिसम्बर, 2009 को 2008 की एम. जे. सी. सं. 1750 और उसके समरूप मामलों में दिए गए निदेश का जानबूझकर उल्लंघन करने के कारण विरोधी पक्षकार के विरुद्ध अवमानना की प्रक्रिया आरंभ करने के लिए अनुरोध किया है ।

3. यह उल्लेखनीय है कि इस न्यायालय के निदेश के अनुसरण में, अन्ततः बिहार कर्मचारी चयन आयोग द्वारा साक्षात्कार आयोजित करने लिए कार्रवाई की गई थी और चयनित अभ्यर्थियों की सूची प्रकाशित की गई थी, जिसको रिट आवेदनों द्वारा आक्षेपित किया गया है और जिन्हें इस मामले के साथ सुना जा रहा है और जिन्हें पृथक् निर्णयों द्वारा पृथक् रूप से निपटाया जा रहा है ।

4. वस्तुतः, आयोग द्वारा तारीख 5 मई, 2012 को परिणाम प्रकाशित करने के पश्चात् इस न्यायालय ने, अंतरिम आदेश द्वारा आयोग और सरकार पर घोषित सफल व्यक्तियों की नियुक्ति के लिए सिफारिश करने

या उनकी नियुक्तियां करने के लिए रोक लगाई थी ।

5. तथापि, रिट आवेदनों के बैच को **अशोक कुमार और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए कतिपय निदेशों के साथ आज निपटाया जा रहा है जिसमें सबसे पहले राज्य सरकार को **अशोक कुमार** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निदेश के अनुसार रोस्टर का पुनर्गठन करना होगा और तत्पश्चात् आयोग उन शेष अभ्यर्थियों के साक्षात्कार आयोजित करेगा, जिनके साक्षात्कार **जवाहर लाल सिंह और अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[2] और इसके समरूप मामलों में पृथक् निर्णय में दिए गए निदेशों के निबंधनों में इस न्यायालय के पूर्वतर आदेश के अनुसार आयु में छूट न दिए जाने के कारण नहीं दिए जा सके हैं ।

6. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए, यह नहीं कहा जा सकता कि विरोधी पक्षकारों की ओर से जानबूझकर कमियों या चूकों के कारण वे अवमानना की प्रक्रिया आरंभ करने के लिए दायित्वाधीन हैं । यह सत्य है कि न तो समय-सीमा के भीतर साक्षात्कार लिया गया और न ही परिणाम प्रकाशित हुआ था किन्तु विद्वान् एकल न्यायाधीश के आदेश के पश्चात् मामला तारीख 23 दिसम्बर, 2009 के खंड न्यायपीठ को और तत्पश्चात् उच्चतम न्यायालय के लिए भेजा गया था और जब एक बार मामला अंतिमता को पहुंच गया, साक्षात्कार आयोजित किया गया था और तारीख 9 मई, 2012 को परिणाम प्रकाशित किया गया था ।

7. इसे दृष्टिगत करते हुए, यह अवमानना आवेदन उत्तरवर्ती संवर्धनों के कारण निष्फल हो गया है और तद्नुसार इसका निपटान किया जाता है ।

आवेदन का तद्नुसार निपटान किया गया ।

मही./मह.

---

[1] 2012 सी. डब्ल्यू. जे. सी. 10337.

[2] 2012 सी. डब्ल्यू. जे. सी. 706.

कंचन महतो और एक अन्य

बनाम

श्रीमती चम्पा देवी और अन्य

तारीख 7 अगस्त, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. दोषित, न्यायमूर्ति जयनन्दन सिंह और न्यायमूर्ति अश्वनि कुमार सिंह

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 140 और 173 – अंतरिम प्रतिकर – अधिकरण का आदेश – अपील या पुनरीक्षण – मोटर यान अधिनियम की धारा 140 के अधीन पारित अंतरिम प्रतिकर का आदेश अधिनिर्णय के समान होता है अतः ऐसा आदेश धारा 173 के अधीन अपीलनीय है ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन यह अपील दुर्घटना करने वाले यान अर्थात् ट्रेक्टर-ट्रेलर के स्वामी द्वारा मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण, नालंदा, बिहार शरीफ द्वारा तारीख 29 सितंबर, 2001 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जो 1988 के अधिनियम की धारा 140 के अधीन अन्तरिम प्रतिकर के लिए फाइल 1997 के दावा मामला सं. 132 में पारित किया गया है । मामला पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया । अपील में तद्नुसार आदेश पारित करते हुए,

अभिनिर्धारित – मामला तारीख 29 जुलाई, 2003 के आदेश के अधीन इस विवाद्यक पर प्राधिकृत निर्णय देने के लिए पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है कि क्या 1988 के अधिनियम की धारा 140 के अधीन किए गए अन्तरिम प्रतिकर के आदेश के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन अपील फाइल की जा सकती है या ऐसे आदेश को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन में आक्षेपित किया जा सकता है । 1997 के दावा मामला सं. 132 में मोटर यान अधिकरण, नालंदा, बिहार शरीफ द्वारा पारित किए गए तारीख 29 सितंबर, 2001 के आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील ग्रहण किए जाने योग्य है । उपर्युक्त आबद्धकर पूर्व निर्णयों को दृष्टिगत करते हुए हरिहर सिंह **बनाम** नवल किशोर चौहान वाले मामले में दिए गए निर्णय की पुष्टि की जाती है । इसके प्रतिकूल अभिव्यक्त मत, यदि कोई है, स्पष्टतः उलटा जाता है । (पैरा 2 और 4)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2008]	ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 460 : **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं. लि.** बनाम **सरजेराव और अन्य ;**	3
[2007]	ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2582 : **यल्लव्वा और अन्य** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कं. लि. और अन्य ;**	3
[2001]	2001 (4) पी. एल. जे. आर. 482: **हरिहर सिंह** बनाम **नवल किशोर चौहान** ।	4

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2002 की सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 36.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों ओर से सर्वश्री शैलेन्द्र कुमार सिन्हा और राजकुमार

प्रत्यर्थियों की ओर से –

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति आर. एम. दोषित ने दिया ।

मु. न्या. दोषित – मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन यह अपील दुर्घटना करने वाले यान अर्थात् ट्रेक्टर-ट्रेलर के स्वामी द्वारा मोटर यान दुर्घटना दावा अधिकरण, नालंदा, बिहार शरीफ द्वारा तारीख 29 सितंबर, 2001 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जो 1988 के अधिनियम की धारा 140 के अधीन अन्तरिम प्रतिकर के लिए फाइल 1997 के दावा मामला सं. 132 में पारित किया गया है ।

2. मामला तारीख 29 जुलाई, 2003 के आदेश के अधीन इस विवाद्यक पर प्राधिकृत निर्णय देने के लिए पूर्ण न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया है कि क्या 1988 के अधिनियम की धारा 140 के अधीन पारित किए गए अन्तरिम प्रतिकर के आदेश के विरुद्ध मोटर यान अधिनियम की धारा 173 के अधीन अपील फाइल की जा सकती है या ऐसे आदेश को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के अधीन पुनरीक्षण आवेदन में आक्षेपित किया जा सकता है ।

3. इस प्रकार का मामला अनिर्णीत नहीं रहा है । माननीय उच्चतम न्यायालय ने **यल्लव्वा और अन्य** बनाम **नेशनल इंश्योरेंस कं. लि. और अन्य**[1] वाले मामले में स्पष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि "अधिनियम की धारा 140 के अधीन प्रतिकर अधिनिर्णीत करने वाला अधिकरण का आदेश धारा 173 के अधीन अपीलनीय है क्योंकि यह धारा 173 के अधीन अधिनिर्णय के समान है ।" उपर्युक्त निर्णय का **यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कं. लि.** बनाम **सरजेराव और अन्य**[2] वाले मामले में अनुसरण किया गया है ।

4. अतः वर्तमान वाले मामले में हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि 1997 के दावा मामला सं. 132 में मोटर यान अधिकरण, नालंदा, बिहार शरीफ द्वारा पारित किए गए तारीख 29 सितंबर, 2001 के आदेश के विरुद्ध वर्तमान अपील ग्रहण किए जाने योग्य है । उपर्युक्त आबद्धकर पूर्व निर्णयों को दृष्टिगत करते हुए **हरिहर सिंह** बनाम **नवल किशोर चौहान**[3] वाले मामले में दिए गए निर्णय की पुष्टि की जाती है । इसके प्रतिकूल अभिव्यक्त मत, यदि कोई है, स्पष्टतः उलटा जाता है ।

5. सामान्यतः, मामला गुण-दोष के आधार पर सुनवाई के लिए विद्वान् एकल न्यायपीठ को भेजा जाना चाहिए । तथापि, वर्तमान मामले में विद्वान् अधिवक्ता श्री शैलेन्द्र कुमार सिन्हा अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित हुए हैं । उन्होंने यह निवेदन किया है कि उन्हें इस बारे में कोई अनुदेश प्राप्त नहीं हुआ है कि 1997 का उपर्युक्त दावा मामला सं. 132 अधिकरण द्वारा अंतिम रूप से विनिश्चित कर दिया गया है या नहीं ।

6. चूंकि मामला 17 वर्ष पुराना है इसलिए हम यह उपधारित कर सकते हैं कि 1997 के दावा मामला सं. 132 का अंतिम रूप से विनिश्चय कर दिया गया है ।

7. तद्नुसार, हम इस अपील का निपटारा करते हैं । रोक आदेश को, यदि कोई हो, रद्द किया जाता है ।

अपील में तद्नुसार आदेश किया गया ।

मह.

---

[1] ए. आई. आर. 2007 एस. सी. 2582.

[2] ए. आई. आर. 2008 एस. सी. 460.

[3] 2001 (4) पी. एल. जे. आर. 482.

जयामति नरेन्द्र शाह मार्फत **विधिक प्रतिनिधि और अन्य**

बनाम

नरेन्द्र अमृतलाल शाह

तारीख 18 जनवरी, 2014

न्यायमूर्ति (श्रीमती) रोशन दलवी

हिन्दू विधि – सहदायिक सम्पत्ति – विभाजन – पति से पूर्व पत्नी की मृत्यु – पत्नी द्वारा सहदायिक सम्पत्ति की वसीयत – पत्नी किसी अंश की तभी हक़दार है जब पति ने या पुत्रों ने पहले ही विभाजन करा लिया हो – कोई विधवा केवल उस हित के विभाजन का दावा कर सकती है जिसका उसका पति हक़दार था ।

वादी, प्रतिवादी का पुत्र है । प्रतिवादी की पत्नी अर्थात् वादी की माता की तारीख 10 जून, 2013 को मृत्यु हो गई थी । उसने अपने पीछे तारीख 2 जुलाई, 2013 की एक रजिस्ट्रीकृत विल छोड़ी थी । वादी ने उसकी संपदा का इंतजाम करने की ईप्सा की है । वादी ने भी उस संपदा का प्रकटीकरण चाहा है जो वादी की जानकारी में नहीं थी । वादी मृतक की जिसने अपना इच्छा पत्र लिखा था, विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी है । वादी ने यह दावा किया कि वह मृतक द्वारा उसके हक में वसीयत की गई संपत्तियों की स्वामी है और उसने इन संपत्तियों के अंतरण के विरुद्ध व्यादेश की मांग की है । प्रस्ताव-सूचना तद्नुसार निपटाते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतक प्रतिवादी की पत्नी थी । वह उसकी पत्नी की हैसियत के सिवाय उसके संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य नहीं थी । प्रतिवादी तभी अपने उत्तराधिकार के प्रयोजन के लिए हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का सदस्य होना कह सकता है जब उसकी पत्नी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के सदस्य के रूप में स्वयं को उपदर्शित कर सकती हो । किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में किसी हिन्दू सहभागी की पत्नी एक सहभागी नहीं होती है । उसका, उसके वैवाहिक कुटुम्ब में, जन्म लेने के आधार पर कोई हित उत्पन्न नहीं होता । केवल ऐसा व्यक्ति जिसे किसी कुटुम्ब में अपने जन्म के आधार पर हित से मिलता है, एक सहभागी होगा और सहभागिता एक हिन्दू संयुक्त कुटुम्ब से अत्यधिक छोटा निकाय है । विधि के उपर्युक्त

सिद्धांत यह उपदर्शित करते हैं कि किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में केवल पुत्र (क्षैतिज रूप से) और भाई (पार्श्विक रूप से) किसी संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब में सहदायिकी गठित करते हैं ; उनकी पत्नियां संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य हो सकती हैं किन्तु सहदायिक नहीं हो सकतीं । किसी सहदायिक के स्वामित्वपूर्ण अधिकार तभी होते हैं जब संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब कोई संयुक्त संपत्ति रखता हो । सहदायिकों की पत्नियां उस संयुक्त संपत्ति में कोई हित नहीं रखतीं जिसके सहदायिक स्वामी हैं या ऐसे सहदायिकों द्वारा धारित है जो सह स्वामी हैं । सह स्वामियों की पत्नियां अपने जन्म के आधार पर कोई हित प्राप्त नहीं करतीं । केवल हिन्दू विधवा अपने पति की मृत्यु पर सहदायिकी या संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में अपने पति का हित प्राप्त करती है । ऐसा हित उन्हें भरणपोषण और आवास का दावा करने के लिए समर्थ बनाता है । कोई विधवा केवल उस हित के विभाजन की मांग कर सकती है जिसके लिए उसका मृतक पति हकदार था । पत्नी, जैसा कि मृतक था, की प्रास्थिति में संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य हो सकती है । संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के सदस्य होने के आधार पर वह ऐसी संयुक्त हिन्दू संपत्ति में कोई अंश, अधिकार, हक या हित प्राप्त नहीं कर सकती जो उसके कुटुम्ब के स्वामित्व में थी । किसी संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब का सदस्य संपत्ति का पूर्ण स्वामी नहीं हो सकता । यदि यह उसकी स्वयं की संपत्ति है तो कोई पत्नी पुत्री के समान विभाजन की मांग नहीं कर सकती । उसे कोई अंश तभी प्राप्त होगा यदि उसके पति या पुत्रों द्वारा विभाजन की मांग की गई हो और संपत्ति का वस्तुतः विभाजन हुआ हो । ऐसी कोई मांग नहीं की गई है और परिणामतः संपत्ति का ऐसा कोई विभाजन नहीं हुआ है । तथ्यतः उस संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब में विभाजन नहीं हुआ है जिसमें पति एक सहदायिक है । अतः पति ने ऐसी सहदायिकी संपत्ति अर्थात् अहमदाबाद के बंगले में कोई विनिर्दिष्ट अंश अर्जित नहीं किया है जो उसके ऐसे पृथक् हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति बन गई हो जिसमें मृतक की पत्नी और मृतक की मृत्यु होने पर उसके बच्चे सम्मिलित हैं । यदि उसके पति के पिता के हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में कोई विभाजन हुआ था जिसमें वह एक सहदायिक है तो पति उस विभाजन में एक अंश प्राप्त करेगा । वह उसकी पैतृक संपत्ति होगी । अतः यह उसकी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब संपत्ति होगी । इस संपत्ति में मृतक का जो उसका पति (प्रतिवादी) था हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का सदस्य होने के नाते संपत्ति में, एक भाग होगा । मृतक ने विभाजन की मांग नहीं की । यदि सहदायिकों (पति और

बच्चों) की मांग पर कोई विभाजन हुआ था तो वह इसके अधीन एक भाग की हकदार होगी । ऐसा भाग उसकी पृथक् संपत्ति होगा जिसकी उसके द्वारा वसीयत की जा सकती है । उसकी मृत्यु ऐसे भाग को प्राप्त करने के पूर्व हो गई थी । चूंकि उसके पति की मृत्यु नहीं हुई थी इसलिए उसे एक विधवा के रूप में भी अधिकार प्राप्त नहीं होंगे । परिणामतः उसका कोई अंश नहीं था और इसलिए उसे उस संपत्ति में ऐसा कोई वसीयती हित प्राप्त नहीं हुआ था जो उसके पति की मृत्यु तक उत्तरजीविता द्वारा उसके पति को न्यागत हुआ हो । परिणामतः "मेरा अंश" या "मोनीस" की वसीयत जो मेरा भाग हो सकती है, पूर्णतया भ्रमित करने वाला है क्योंकि उसकी मृत्यु की तारीख को उसका पति जीवित था और वह एक विधवा नहीं थी । किसी पत्नी द्वारा अपने पति के जीवनकाल के दौरान उस अंश और हित में जिसे वह अपने हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों में एक सहदायिक के रूप में रखता है, दावा पूर्णतया अपरिपक्व है और पूर्ण रूप से भ्रमित करने वाला है । विल के अधीन ऐसी वसीयत ऐसी संपत्ति में मृतक के हक को उपदर्शित नहीं करती । अतः, वह मृतक के "भाग" के रूप में 1/3 अंश की कोई "मोनीस" वसीयत नहीं कर सकती जोकि उसके पति को अपने हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में प्राप्त हुआ था जिसमें कि वह अपने भाइयों और पुत्रों के साथ एक सहदायिक था । परिणामतः ऐसी संपत्ति के संबंध में व्यादेश मंजूर नहीं किया जा सकता जैसाकि दावा किया गया है । (पैरा 8, 11, 14, 15 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2013]	2013 (1) ए. बी. आर. 713 : **शालिनी सुमंत राउत** बनाम **मिलिंद सुमंत राउत** ;	10
[1994]	1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2601 = 1994 एम. एल. जे. 1450 : **वसंत प्रताप पंडित** बनाम **डा. अनंत त्रियम्बक सबनीज** ;	6
[1970]	ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 14 = (1969) 1 एस. सी. सी. 748 : **एन. वी. नरेन्द्र नाथ** बनाम **धनकर आयुक्त, आंध्र प्रदेश राज्य** ;	16

[1969]	ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 1330 : **भारतीय स्टेट बैंक** बनाम **घमंडी राम ;**	10
[1966]	ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 24 (वी. 53 सी. 7) : **आयकर आयुक्त, मध्य प्रदेश नागपुर और भंडारा नागपुर** बनाम **सेठ गोविन्दराम शुगर मिल्स ;**	17
[1950]	ए. आई. आर. (37) 1950 मद्रास 538 (सी. एन. 223) (1) : **वी. एम. एन. राधा अम्मल कांचीपुरम** बनाम **आयकर आयुक्त, मद्रास ।**	17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2013 का मोशन सूचना (एल.) सं. 2347.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1905 की धारा 96 के अधीन अपील ।

वादी की ओर से सर्वश्री आशीष कामत, बंकिम गांगर, नेगांधी, शाह और हिमायतुल्ला

प्रतिवादी की ओर से श्री गौरंग मेहता और सुश्री निकिता मेनन

न्यायमूर्ति (श्रीमती) रोशन दलवी – वादी, प्रतिवादी का पुत्र है । प्रतिवादी की पत्नी अर्थात् वादी की माता की तारीख 10 जून, 2013 को मृत्यु हो गई थी । उसने अपने पीछे तारीख 2 जुलाई, 2013 की एक रजिस्ट्रीकृत विल छोड़ी थी । वादी ने उसकी संपदा का इंतजाम करने की ईप्सा की है । वादी ने भी उस संपदा का प्रकटीकरण चाहा है जो वादी की जानकारी में नहीं थी । वादी मृतक की जिसने अपना इच्छा पत्र लिखा था, विल के अधीन एकमात्र हिताधिकारी है । वादी ने यह दावा किया कि वह मृतक द्वारा उसके हक में वसीयत की गई संपत्तियों की स्वामी है और उसने इन संपत्तियों के अंतरण के विरुद्ध प्रायिक व्यादेश की मांग की है ।

2. वादी ने वाद में उन जंगम संपत्तियों के विभाजन की मांग की है जो उसके हक में वसीयत की गई हैं और साथ ही साथ संपत्तियों को वादी को सुपुर्द करने और इन संपत्तियों के अंतरण के विरुद्ध प्रायिक स्थायी व्यादेश जारी करने की मांग की है ।

3. प्रतिवादी ने अंतरिम अनुतोषों की मंजूरी का विरोध करते हुए

प्रस्तावित सूचना के जवाब में अपना शपथपत्र फाइल किया । वादी ने इसका प्रत्युत्तर भी फाइल किया है ।

4. उन संपत्तियों के बारे में जो मृतक की संपदा थीं, मांगे गए व्यादेशात्मक अनुतोषों की मंजूरी के लिए संबंधित पक्षकारों के पक्षकथनों पर विचार करना आवश्यक है । वादी ने जंगम संपत्तियों की सूची प्रदर्श-सी में और वादपत्र में दाखिल जंगम संपत्तियों की सूचना प्रदर्श-डी में उन संपत्तियों का उल्लेख किया है जो मृतक की संपदा में सम्मिलित थीं । मामले के निपटान के प्रयोजन के लिए जंगम संपत्तियों की स्थिति पर विचार करना आवश्यक है ।

5. वादी ने उस आधे अविभक्त अंश का दावा किया है जो प्रेम कुंज सहकारी आवास सोसाइटी लिमिटेड साइन (पश्चिमी), बम्बई-400022 के फ्लैट सं. 14 में था । प्रतिवादी इस फ्लैट में रहता है । वादी ने यह कहा है कि मृतक की मृत्यु के पूर्व इस परिसर के बारे में पक्षकारों के बीच कतिपय विवाद थे । मामले में इस संपत्ति के विक्रय और अंतरण के विरुद्ध प्रायिक व्यादेश मांगा गया है ।

6. वादी ने उर्वशी भवन, साइन (पश्चिमी), बम्बई-400022 स्थित गैरज सं. 1 में अपने अधिभोगी अधिकारों का भी दावा किया है । यह कहा गया है कि यह एक पार्किंग गैरज है । यह कहा गया है कि यह न तो आवासीय परिसर है और न ही वाणिज्यिक है । यह बम्बई किराया अधिनियम, 1947 की धारा 5(11)(ग)(i) या (ii) अथवा महाराष्ट्र किराया नियंत्रण अधिनियम, 1999 की धारा 7(15)(घ) के अन्तर्गत नहीं आता है । वाद में यह विचार किया जाना है कि क्या ऐसा कोई गैरज किसी कानूनी किराएदार की मृत्यु के पश्चात् मृतक के कुटुम्ब के किसी सदस्य को न्यागत होगा जिसकी वसीयत नहीं की जा सकती जैसा कि **वसंत प्रताप पंडित** बनाम **डा. अनंत त्रियम्बक सबनीज**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है । तथापि, निर्णय में एक वाणिज्यिक या आवासीय परिसर पर विचार किया गया था । कोई पार्किंग गैरज जिसमें इसका उपयोग करने वाला अधिभोगी केवल पार्किंग करने वाले यानों को खड़ा करता हो, ऐसे आवासीय वाणिज्यिक परिसर के बराबर नहीं होगा जिनमें मृतक के कुछ वारिस रहते हैं या मृतक के जीवनकाल के दौरान मृतक के साथ कारबार करते हैं । गैरज किराएदार की मृत्यु के पश्चात् स्वामी को वापस हो जाएगा

[1] 1994 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 2601 = 1994 एम. एल. जे. 1450.

या उत्तराधिकारियों में समान भागों में न्यागत हो सकता है । इस प्रकार विधि को दृष्टिगत करते हुए हकदारी जो वसीयत के द्वारा अंतरित हो सकती है, पर विचार किया जाएगा । मामलों के लंबन के दौरान ऐसा गैरज अंतरण या विक्रय से संरक्षित होना चाहिए ।

7. वादी ने मृतक की विल के अधीन एक अप्रायिक वसीयत के आधार पर एक अप्रायिक दावा किया है । वादपत्र में संलग्न विल प्रदर्श-बी से अन्य बातों के साथ-साथ यह उपदर्शित होता है कि मृतक की एक संपत्ति जो "मोनीस है" हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के आधार पर नरेन्द्र अमृत लाल शाह के हिसाब में "मेरे अंश" के अन्तर्गत आती है और जिसमें संयुक्त हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का 1/3 भाग सम्मिलित है, और यह सम्पत्ति अहमदाबाद में स्थित अश्वमेघ सहकारी आवासीय सोसाइटी बंगला है । मृतक का हक जो उसने संपत्ति में वसीयत के अपने अधिकार द्वारा दिया है, जिसे मोनीस में दिखाया गया है, हमारे समक्ष के प्रत्यर्थी अर्थात् उसके पति के हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के भाग के अन्तर्गत आता है । पति विल की तारीख को और उसकी मृत्यु की तारीख़ को जीवित था । मृतक विधवा नहीं थी । मृतक ने वह अंश प्राप्त नहीं किया था जो हिन्दू स्त्रियों का संपत्ति में अधिकार अधिनियम, 1937 की धारा 3 के अनुसार उसके पति की मृत्यु होने पर हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में उसके पति का था । मृतक उस हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की सदस्य नहीं थी जिसने बंगले में स्वामित्व प्राप्त किया था और जिसमें उसके पति अर्थात् हमारे समक्ष के प्रतिवादी का 1/3 भाग था । यह दलील दी गई है कि चूंकि मृतक अपने 3 बच्चों के साथ अपने पति के संयुक्त कुटुम्ब की एक सदस्य थी इसलिए वादी उनमें से एक है और अन्य दो उसके सौतेले भाई हैं । अतः वादी की ओर से यह दलील दी गई है कि मृतक के 1/3 भाग में से उसका 1/5 भाग था जो उसका पति हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में धारित करता था और जो बंगले का स्वामी था । अतः मृतक का हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब संपत्तियों में 20 प्रतिशत भाग के हकदार होने का दावा किया गया है ।

8. मृतक प्रतिवादी की पत्नी थी । वह उसकी पत्नी की हैसियत के सिवाय उसके संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य नहीं थी । प्रतिवादी तभी अपने उत्तराधिकार के प्रयोजन के लिए हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का सदस्य होना कह सकता है जब उसकी पत्नी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के सदस्य के रूप में स्वयं को उपदर्शित कर सकती हो । किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में किसी हिन्दू सहभागी की पत्नी एक सहभागी नहीं होती है । उसका, उसके

वैवाहिक कुटुम्ब में, जन्म लेने के आधार पर कोई हित उत्पन्न नहीं होता । केवल ऐसा व्यक्ति जिसे किसी कुटुम्ब में अपने जन्म के आधार पर हित मिलता है, एक सहभागी होगा और सहभागिता एक हिन्दू संयुक्त कुटुम्ब से अत्यधिक छोटा निकाय है ।

9. प्रतिवादी के काउंसेल ने "ला लेक्सिकान" पृष्ठ 416 प्रस्तुत किया है जिसमें सहदायिकों की परिभाषा इस प्रकार उपदर्शित की गई है :–

> "**सहदायिक** – जहां अन्यथा समांशी कहा गया है वहां इसका अर्थ किसी पूर्वज के उत्तराधिकार में समान भाग तात्पर्यित है या ऐसा व्यक्ति तात्पर्यित है जो अपने पूर्वजों की भूमियों में समान अंश रखता है । सहदायिक वह है जो किसी समान पूर्वज की संपदा में उत्तराधिकार में अन्यों के साथ (समान) अंश रखता है (हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 का स्पष्टीकरण-1) ।
>
> इस प्रकार सहदायिकी संपत्ति इस प्रकार उपदर्शित है –
>
> > **सहदायिकी संपत्ति** – 'सहदायिकी संपत्ति' में ऐसी सहदायिकी संपत्ति सम्मिलित है जिसमें मृतक पति का उसके जीवनकाल के दौरान एक संयुक्त स्वामी के रूप में हित था और इसलिए वह वंशजीय संपत्ति कही जाती थी ।
> >
> > सहदायिकी संपत्ति से ऐसी संपत्ति अभिप्रेत है जिसमें पैतृक संपत्ति सम्मिलित है या संयुक्त रूप से अर्जित की गई है या ऐसी संपत्ति जो समान स्टाक की है या ऐसी संपत्ति से संलग्न है ।"

10. सहदायिक या संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति के नियम और विद्यमानता को **भारतीय स्टेट बैंक** बनाम **घमंडी राम**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय और **शालिनी सुमंत राउत** बनाम **मिलिंद सुमंत राउत**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा स्पष्ट किया गया है जिसके पैरा 7 में संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में सहदायिक के हित का और सहदायिकी तथा किसी संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति के बीच अन्तर का उल्लेख किया गया है । किसी सहदायिक संपत्ति में हित केवल जन्म के आधार पर होता है । तथापि, संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब और सहदायिक संपत्ति के विभिन्न नियमों

---

[1] ए. आई. आर. 1969 एस. सी. 1330.

[2] 2013 (1) ए. बी. आर. 713.

का मुल्ला कृत हिन्दू ला, 12वां संस्करण जिल्द-I, अध्याय 12 में उल्लेख किया गया है जिसे इस निर्णय में उल्लिखित किए जाने की आवश्यकता है :–

1. पुरुष अपत्य अपने जन्म की तारीख से ही सहदायिक संपत्ति में हित अर्जित कर लेता है (पृष्ठ 357) ।

2. कोई हिन्दू सहदायिक संयुक्त कुटुम्ब के मुकाबले कम हैसियत रखता है । इसमें केवल ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हैं जिन्होंने संयुक्त या सहदायिक संपत्ति में जन्म द्वारा हित अर्जित किया हो । (अतः संयुक्त संपत्ति और सहदायिक संपत्ति या संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब संपत्ति या सहदायिक संपत्ति एक-दूसरे के पर्याय हैं) (पृष्ठ 359) ।

3. ऐसे व्यक्ति जिन्होंने संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति या सहदायिक संपत्ति में जन्म द्वारा हित प्राप्त किया है, संयुक्त संपत्ति के धारक के पुत्र, पौत्र और परपोते हैं, अपने जन्म से ही हकदार बन जाते हैं (पृष्ठ 359) ।

4. कोई संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब का सदस्य अपनी पुरुष पंक्ति में अपने पूर्वजों के साथ समान पैतृक हक रखता है । (पृष्ठ 361 और 362)

5. कोई स्त्री सहदायिक नहीं हो सकती, भले ही वह संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य हो (विधि में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 में 2005 के संशोधन द्वारा स्थिति परिवर्तित हो गई है । संशोधन किसी सहदायिक की पुत्रियों को लागू होता है न कि किसी सहदायिक की पत्नी को) (पृष्ठ 362) ।

6. संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति का स्वामित्व सहदायिकों को मिलता है जिनमें कर्ता और उसके पुत्र सम्मिलित हैं । वे सह-स्वामी या सहदायिक हैं (अतः सह-स्वामी और सहदायिक की अभिव्यक्ति समानार्थक है) (पृष्ठ 364) ।

7. किसी सहदायिकी का स्वामित्व सहदायिकों के सम्पूर्ण निकाय में है । अतः इसमें उनकी पत्नियां सम्मिलित नहीं हैं । पत्नियां किसी सहदायिकी में सहदायिक नहीं हो सकतीं । केवल सहदायिक सह-स्वामी होंगे । अतः कोई पत्नी पति के हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में अपने पति के साथ सह-स्वामी के रूप में अंश

की हकदार नहीं होगी (पृष्ठ 366) ।

8. सहदायिकी हित घटता-बढ़ता है । यह कुटुम्ब में मृत्यु होने पर विस्तारित हो जाता है ; यह कुटुम्ब में जन्म द्वारा कम हो जाता है । ऐसा हित अविभाजित सहदायिकी हित कहलाता है । (किसी सहदायिक की पत्नी की मृत्यु अन्य सहदायिकों या सह-स्वामियों के अंश को बढ़ा या घटा नहीं सकती) (पृष्ठ 366) ।

9. किसी सहदायिक की मृत्यु पर अन्य उत्तरजीविता द्वारा अंश प्राप्त करते हैं जिसमें वे पहले से समान अंश रखते हैं । ऐसा अंश पूर्ण रूप से पत्नी को न्यागत नहीं हो सकता । अन्यथा सहदायिकी की सम्पूर्ण संकल्पना निरर्थक हो जाएगी । यह पूर्ण सहदायिकी में पति की संपदा में पत्नी को उत्तराधिकार के बराबर है (पृष्ठ 366) ।

10. मृतक सदस्य का हित उसकी मृत्यु पर जीवित सहदायिक को चला जाता है (न कि पत्नी को) (पृष्ठ 366) ।

11. कोई सहदायिक संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति या सहदायिकी संपत्ति में संयुक्त हित या संयुक्त कब्जा रखता है (उसकी पत्नी अन्य सहदायिकों के साथ हित नहीं रख सकती) (पृष्ठ 370) ।

12. किसी सहदायिक की मृत्यु पर उसका हित सहदायिक संपत्ति में उसके उत्तराधिकारियों को प्राप्त नहीं होता ; यह उत्तरजीवित द्वारा अन्य सहदायिकों को प्राप्त होता है, यह स्थिति पुरानी असंहिताबद्ध हिन्दू विधि में है । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 6 के अधीन स्थिति इससे भिन्न है जिसके अधीन किसी हिन्दू पुरुष को जिसकी अपने पीछे महिला उत्तराधिकारियों या पुरुष उत्तराधिकारियों को जिन्होंने अन्य महिला वारिस होने का दावा किया है, छोड़कर बिना इच्छा पत्र के मृत्यु हो जाती है, सहदायिकी संपत्ति में उनका भाग उत्तराधिकार द्वारा न्यागत होगा न कि उत्तरजीविता द्वारा ।

13. सहदायिकों का सामुदायिक हित होता है और एक जैसा कब्जा होता है । अतः कोई सहदायिक संपत्ति के किसी भाग पर अनन्य कब्जा नहीं रख सकता है (अतः कोई सहदायिक संपत्ति अंतरित कर सकता है या संपत्ति के किसी विनिर्दिष्ट भाग में

वसीयती हित रख सकता है) (पृष्ठ 409) ।

14. कोई सहदायिक किसी समय पर निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में उसका कितना भाग है । कोई सदस्य संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में या इसकी आय में एक निश्चित भाग का हकदार नहीं होगा (पृष्ठ 409) ।

15. प्रत्येक सहदायिक कुटुम्ब संपत्ति में संयुक्त कब्जे का हकदार होगा और संयुक्त रूप से उपभोग करने का हकदार होगा । (चूंकि कोई सहदायिक अनन्य कब्जा या हित नहीं रख सकता, इसलिए ऐसे किसी हित की वसीयत नहीं की जा सकती या उत्तराधिकार में प्राप्त नहीं कर सकता (पृष्ठ 410) ।

16. कोई सहदायिक जिसे संयुक्त संपत्ति से विवर्जित कर दिया गया है, वाद द्वारा अपने अधिकार का प्रवर्तन कराने का हकदार है । वह विभाजन हेतु वाद संस्थित करने के लिए आबद्ध नहीं है । वह संयुक्त कब्जे और उपभोग के लिए वाद संस्थित करने का हकदार है । (ऐसा कोई अधिकार किसी सहदायिक की पत्नी को उपलब्ध नहीं है सिवाय उस संपत्ति के उपभोग और कब्जे के जो उसकी ससुराल की संपत्ति है या आवासीय भाग है) । [घरेलू हिंसा से स्त्रियों का संरक्षण अधिनियम, 2005 की धारा 17 (डी. वी. अधिनियम) देखें] (पृष्ठ 410) ।

17. विभाजन के प्रवर्तन का अधिकार और उत्तरजीविता का अधिकार प्राप्त है "यह विभाजन के लिए अधिकार ही है जो उत्तरजीविता द्वारा हित प्राप्त करने के लिए अधिकार को निर्धारित करता है" [अनंत **बनाम** गोपाल, (1895) 19 बाम्बे 269 वाला मामला देखिए] ।

11. विधि के उपर्युक्त सिद्धांत यह उपदर्शित करते हैं कि किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में केवल पुत्र (क्षैतिज रूप से) और भाई (पार्श्विक रूप से) किसी संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब में सहदायिकी गठित करते हैं ; उनकी पत्नियां संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य हो सकती हैं किन्तु सहदायिक नहीं हो सकतीं । किसी सहदायिक के स्वामित्वपूर्ण अधिकार तभी होते हैं जब संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब कोई संयुक्त संपत्ति रखता हो । सहदायिकों की पत्नियां उस संयुक्त संपत्ति में कोई हित नहीं रखतीं जिसके सहदायिक स्वामी हैं या ऐसे सहदायिकों द्वारा धारित है जो सह-स्वामी हैं । सह-

स्वामियों की पत्नियां अपने जन्म के आधार पर कोई हित प्राप्त नहीं करतीं । केवल हिन्दू विधवा अपने पति की मृत्यु पर सहदायिकी या संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति में अपने पति का हित प्राप्त करती है । ऐसा हित उन्हें भरणपोषण और आवास का दावा करने के लिए समर्थ बनाता है । कोई विधवा केवल उस हित के विभाजन की मांग कर सकती है जिसके लिए उसका मृतक पति हकदार था ।

12. मिताक्षरा विधि में भी विभाजन के अधिकार के संबंध में पत्नी की स्थिति के संबंध में मुल्ला कृत हिन्दू ला, 20वां संस्करण, जिल्द-I, पैरा 314 पृष्ठ 579 में इस प्रकार कहा गया है :–

> "314 पत्नी –
>
> (1) कोई पत्नी स्वतः विभाजन की मांग नहीं कर सकती, तथापि, यदि उसके पति और पुत्रों के बीच विभाजन हो गया है तो वह अपने पुत्र के समान अंश (सिवाय दक्षिण भारत के) प्राप्त करने के लिए हकदार है और वह उस अंश को धारित करते हुए अपने पति से पृथक् उसका उपभोग कर सकती है ।"

13. परिणामतः किसी पत्नी को ऐसे हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में अंश, अधिकार, हक या हित प्राप्त नहीं है जिसमें उसका पति अपने भाइयों, पिता या पुत्रों के साथ सहदायिक है (2005 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 में संशोधन के पश्चात् उसकी बहनें और पुत्रियां भी सम्मिलित हैं) ।

14. पत्नी, जैसा कि मृतक था, की प्रास्थिति में संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब की सदस्य हो सकती है । संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब के सदस्य होने के आधार पर वह ऐसी संयुक्त हिन्दू संपत्ति में कोई अंश, अधिकार, हक या हित प्राप्त नहीं कर सकती जो उसके कुटुम्ब के स्वामित्व में थी । किसी संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब का सदस्य संपत्ति का पूर्ण स्वामी नहीं हो सकता । यदि यह उसकी स्वयं की संपत्ति है तो कोई पत्नी पुत्री के समान विभाजन की मांग नहीं कर सकती । उसे कोई अंश तभी प्राप्त होगा यदि उसके पति या पुत्रों द्वारा विभाजन की मांग की गई हो और संपत्ति का वस्तुतः विभाजन हुआ हो । ऐसी कोई मांग नहीं की गई है और परिणामतः संपत्ति का ऐसा कोई विभाजन नहीं हुआ है । तथ्यतः उस संयुक्त हिन्दू कुटुम्ब में विभाजन नहीं हुआ है जिसमें पति एक सहदायिक है । अतः पति ने ऐसी सहदायिकी संपत्ति अर्थात् अहमदाबाद के बंगले में कोई विनिर्दिष्ट अंश अर्जित नहीं

किया है जो उसके ऐसे पृथक् हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति बन गई हो जिसमें मृतक की पत्नी और मृतक की मृत्यु होने पर उसके बच्चे सम्मिलित हैं ।

15. यदि उसके पति के पिता के हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में कोई विभाजन हुआ था जिसमें वह एक सहदायिक है तो पति उस विभाजन में एक अंश प्राप्त करेगा । वह उसकी पैतृक संपत्ति होगी । अतः यह उसकी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब संपत्ति होगी । इस संपत्ति में मृतक का जो उसका पति (प्रतिवादी) था हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब का सदस्य होने के नाते संपत्ति में एक भाग होगा । मृतक ने विभाजन की मांग नहीं की । यदि सहदायिकों (पति और बच्चों) की मांग पर कोई विभाजन हुआ था तो वह इसके अधीन एक भाग की हकदार होगी । ऐसा भाग उसकी पृथक् संपत्ति होगा जिसकी उसके द्वारा वसीयत की जा सकती है । उसकी मृत्यु ऐसे भाग को प्राप्त करने के पूर्व हो गई थी । चूंकि उसके पति की मृत्यु नहीं हुई थी इसलिए उसे एक विधवा के रूप में भी अधिकार प्राप्त नहीं होंगे । परिणामतः उसका कोई अंश नहीं था और इसलिए उसे उस संपत्ति में ऐसा कोई वसीयती हित प्राप्त नहीं हुआ था जो उसके पति की मृत्यु तक उत्तरजीविता द्वारा उसके पति को न्यागत हुआ हो । परिणामतः "मेरा अंश" या "मोनीस" की वसीयत जो मेरा भाग हो सकती है, पूर्णतया भ्रमित करने वाला है क्योंकि उसकी मृत्यु की तारीख को उसका पति जीवित था और वह एक विधवा नहीं थी ।

16. वादी के काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में **एन. वी. नरेन्द्र नाथ** बनाम **धनकर आयुक्त, आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय का अवलंब लिया है । उक्त निर्णय एकमात्र जीवित सहदायिक, उसकी पत्नी और पुत्रियों को हक पहुंचने के संबंध में है । यदि कराधान के प्रयोजन के लिए निर्धारिती स्वयं को हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के रूप में उपदर्शित करता है तो हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के कार्यों का अनुसरण किया जाएगा । यह मामला हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की हैसियत में उपदर्शित किए गए निर्धारण से संबंधित है । हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में निर्धारिती, उसकी पत्नी और दो अवयस्क पुत्रियां सम्मिलित हैं । निर्णय में इस बात पर विचार किया गया था कि क्या हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के रूप में स्वयं को उपदर्शित करना धनकर अधिनियम, 1957 की धारा 3 के अधीन मान्य है ।

---

[1] ए. आई. आर. 1970 एस. सी. 14 = (1969) 1 एस. सी. सी. 748.

यह अभिनिर्धारित किया गया था कि हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की विधिक मान्यता है । निर्णय के पैरा 4 में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में ऐसा व्यक्ति सम्मिलित है जो समान वंशज से विरासत की कतार में सम्मिलित है और उसमें उसकी पत्नियां और अविवाहित पुत्रियां सम्मिलित हैं जो कि हिन्दू सहदायिकी के सदृश हैं जो कि एक संकुचित निकाय है और जिसमें केवल ऐसे व्यक्ति सम्मिलित हैं जिन्होंने जन्म के आधार पर सहदायिकी संपत्ति में हित अर्जित किया है । परिणामतः यह मत व्यक्त किया गया था कि यद्यपि कोई पत्नी हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की सदस्य हो सकती है, तथापि, कोई स्त्री सहदायिकी की सदस्य नहीं हो सकती । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 6 में वर्ष 2005 में संशोधन के पश्चात् भी कोई पत्नी एक सहदायिक नहीं होगी; केवल किसी सहदायिक की पुत्री एक सहदायिक होगी । अतः निर्णय में अभिव्यक्त मत इस सीमा तक लागू होगा कि यद्यपि कोई पत्नी जो हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की सदस्य है, वह सहदायिकी की सदस्य नहीं है और वह एक सहदायिक नहीं है । वह इस प्रकार निर्धारिती हो सकती है, तथापि, सहदायिकी संपत्ति में हित प्राप्त नहीं कर सकती क्योंकि वह हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की सदस्य नहीं है अपितु वह एक सहदायिकी है जो कि एक संकुचित निकाय है जिसने केवल संयुक्त या सहदायिकी संपत्ति में स्वामित्व और हित अर्जित किया है ।

निर्णय के पैरा 5 में अभिव्यक्त मत से स्वतः यह उपदर्शित होता है और यद्यपि संयुक्त संपत्ति और सहदायिकी संपत्ति पर्याय हैं, तथापि, हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब की सदस्य और एक सहदायिक पर्याय नहीं हैं ।

17. प्रतिवादी के विद्वान् काउंसेल ने मेरा ध्यान मद्रास उच्च न्यायालय के दो निर्णयों की ओर दिलाया है जिनका बाद में उच्चतम न्यायालय द्वारा **वी. एम. एन. राधा अम्मल कांचीपुरम** बनाम **आयकर आयुक्त, मद्रास**[1] और **आयकर आयुक्त, मध्य प्रदेश, नागपुर और भंडारा नागपुर** बनाम **सेठ गोविन्दराम शुगर मिल्स**[2] वाले मामलों के निर्णयों में अनुसरण किया गया है जो कि एक सहदायिक द्वारा किए गए प्रबंध से संबंधित हैं । निर्णय में हिन्दू स्त्रियों का अधिकार अधिनियम, 1937 पर विचार किया गया है । अधिनियम का प्रभाव यह माना गया है कि "केवल" पति के भाग में विधवा

---

[1] ए. आई. आर. (37) 1950 मद्रास 538 (सी. एन. 223) (1).

[2] ए. आई. आर. 1966 एस. सी. 24 (वी. 53 सी. 7).

का हित है और इसलिए उस हित में सृजित संपदा में हिन्दू विधवा के हित के रूप में है । उसे सहदायिक की हैसियत या हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब के कर्ता के रूप में कुटुम्ब के अन्य सदस्यों को दिए जाने वाले अधिकार को प्रदत्त किए बिना विभाजन का दावा किए जाने के लिए भी हकदार माना गया है ।

18. अतः, धारा 3 के अधीन अधिकार केवल विधवाओं को उपलब्ध हैं । यह एक परिसीमित अधिकार है । यह उस अंश में अधिकार है जो पति को सहदायिकी में प्राप्त था । हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 की धारा 14 द्वारा धारा 3 को निरसित कर दिया गया है जो संपत्ति में हिन्दू स्त्री को उसके कब्जे के बदले में अधिकार प्रदत्त करती थी । यह एक पूर्णतया भिन्न संकल्पना है ।

19. किसी पत्नी द्वारा अपने पति के जीवनकाल के दौरान उस अंश और हित में जिसे वह अपने हिन्दू अविभक्त कुटुम्बों में एक सहदायिक के रूप में रखता है, दावा पूर्णतया अपरिपक्व है और पूर्ण रूप से भ्रमित करने वाला है । विल के अधीन ऐसी वसीयत ऐसी संपत्ति में मृतक के हक को उपदर्शित नहीं करती । अतः, वह मृतक के "भाग" के रूप में 1/3 अंश की कोई "मोनीस" वसीयत नहीं कर सकती जोकि उसके पति को ऐसे हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में प्राप्त हुआ था जिसमें वह अपने भाइयों और पुत्रों के साथ एक सहदायिक था । परिणामतः ऐसी संपत्ति के संबंध में व्यादेश मंजूर नहीं किया जा सकता जैसाकि दावा किया गया है ।

20. मृतक की अन्य जंगम संपदा में कतिपय चीजें और आभूषण, फर्नीचर और संलग्नक तथा तीन प्राइवेट कुटुम्बीय कंपनियों में अंश उपदर्शित किए गए हैं । वादी का यह कर्तव्य है कि वह स्वयं द्वारा दावा की गई संपत्तियों को साबित करे क्योंकि यह विवादित है ।

21. वादी द्वारा प्राइवेट लिमिटेड कंपनियां उपदर्शित की गई हैं जिनमें मृतक का कतिपय समान इक्वीटी शेयर बताए गए हैं । यह बात कि इन कंपनियों की स्थिति क्या है और कितने शेयर हैं, विचारण में सुनिश्चित की जानी है । मृतक की यह संपदा विवादित नहीं है ।

22. अतः निम्नलिखित आदेश किए जाते हैं :–

(1) प्रतिवादी अपने कब्जे की संपत्ति का अंतरण, प्रभार, स्थानांतरण नहीं करेगा या अन्यथा प्रेमकुंज सहकारी आवास सोसाइटी

लिमिटेड, साइन (पश्चिम), मुम्बई-400022 के फ्लैट सं. 14 पर, पर-व्यक्ति अधिकार तथा उर्वशी भवन, साइन (पश्चिम), मुम्बई-400022 में स्थित गैरज सं. 1 में किराएदारी अधिकार सृजित नहीं करेगा ।

(2) नरेन्द्र अमृतलाल शाह हिन्दू अविभक्त कुटुम्ब में एक सहदायिक के रूप में या अहमदाबाद स्थित भू-खंड में या बंगले में मृतक के अविभक्त 1/5 भाग के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

(3) मृतक के आभूषण या फर्नीचर या अन्य संलग्नक चीजों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

(4) प्रतिवादी मृतक द्वारा धारित तीन प्राइवेट लिमिटेड कंपनियों के शेयरों को तथा अपने कब्जे की उन संपत्तियों में किसी पर-व्यक्ति को अधिकार अंतरित, प्रभारित या सृजित नहीं करेगा या कब्जा नहीं देगा जिस संपत्ति को वादपत्र में प्रदर्श-डी के रूप में मृतक की जंगम संपत्तियों की सूची में मद सं. 3 में उपदर्शित किया गया है ।

(5) प्रतिवादी शपथ पर आस्तियां और संपत्तियां, चाहे वह जंगम हों या स्थावर, 30 दिन के भीतर मृतक की संपदा का वर्णन करते हुए प्रकट करेगा ।

(6) प्रस्ताव-सूचना का तद्नुसार निपटान किया जाता है । खर्चों के बारे में कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

(7) प्रतिवादी पर वादपत्र की तामील की गई है और उसने प्रतिनिधित्व किया है । प्रतिवादी 30 दिन के भीतर अपना लिखित कथन फाइल करेगा ।

प्रस्ताव-सूचना का तद्नुसार निपटान किया गया ।

मह.

कैलाश नारायण महावर

बनाम

सोना बाई (श्रीमती) और अन्य

तारीख 11 फरवरी, 2014

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1998 का 5) – आदेश 22 का नियम 4 [सपठित परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5] – विधिक प्रतिनिधियों का प्रतिस्थापन – विलम्ब माफी – आवेदक का अशिक्षित ग्रामवासी या निर्धन नहीं होना – आवेदक के अधिवक्ता द्वारा प्रत्येक अवसर पर न्यायालय के समक्ष उपस्थित होना – आवेदक के अधिवक्ता द्वारा जिम्मेदारी और तत्परतापूर्वक कार्य करना – उपर्युक्त तथ्यों से यह दर्शित होता है कि विलम्ब माफी के लिए पर्याप्त कारण नहीं हैं – इन परिस्थितियों में, आवेदन नामंजूर किया जाना युक्तियुक्त और समुचित है ।

वर्तमान मामले में, वाद लम्बित रहने के दौरान प्रतिवादी कालू की तारीख 19 नवम्बर, 2008 को मृत्यु हो गई थी । इस तथ्य के बारे में सूचना वादी के विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय के समक्ष तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को दी थी । मामला, तारीख 25 मार्च, 2009 को स्थगित हुआ था और उसके बाद तारीख 15 जुलाई, 2009 को स्थगित हुआ । तथापि, प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों, त्यजन विलेख के हिताधिकारी को अभिलेख पर लाने के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष वादी द्वारा चुनौती दी गई थी । वादी की ओर से वाद में प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाए जाने में असफल रहने को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी सं. 3 कल्याण ने विचारण न्यायालय के समक्ष तारीख 5 दिसम्बर, 2009 को एक आवेदन फाइल किया, यह कथन करते हुए कि वादी द्वारा प्रतिवादी सं. 2 कालू की तारीख 19 नवम्बर, 2008 को मृत्यु होने के 90 दिनों के भीतर उसके विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाए जाने में वादी की असफलता, तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को उसके काउंसेल को सूचना होने के बावजूद, को ध्यान में रखते हुए, वाद उपशमन होने के कारण खारिज किया जाता है । वादी द्वारा इस बारे में, तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को

सूचना होने पर अथवा तारीख 5 दिसम्बर, 2009 को आवेदन फाइल करने पर कुछ भी नहीं किया गया । यह प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् तारीख 22 सितम्बर, 2010 को अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण वादी स्वयं विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था । यह कथन किया गया है कि उसके उपरान्त उसे प्रतिवादी सं. 2 कालू की मृत्यु के बारे में जानकारी हुई और इसके तत्काल पश्चात् उसने प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन फाइल करने में हुए बिलम्ब की माफी की ईप्सा करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के साथ परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन फाइल किया । तारीख 27 जनवरी, 2011 के आदेश द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कालू के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए आवेदन करने में हुए विलम्ब माफी की ईप्सा करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के साथ परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन फाइल आवेदन पूर्णतया अस्पष्टीकृत है और उक्त आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी देने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं हैं । परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन फाइल आवेदन खारिज किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन भी खारिज हो जाता है । विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद का मौजूदा परिस्थितियों में उपशमन हो जाता है । इससे व्यथित होकर वर्तमान अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय के सुविचारित मत में, वादी के विद्वान् काउंसेल के निवेदन में कोई बल नहीं है । परिसीमा विधि एक वर्जन विधि है और लोक नीति पर आधारित है । निस्संदेह, उपचार लेने में विलम्ब को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन माफी दी जा सकती है, फिर भी न्यायालय की कृपा और विवेक का प्रयोग करने की ईप्सा रखने वाले पक्षकार द्वारा न्यायालय के समक्ष विलम्ब के लिए पर्याप्त कारण स्पष्टीकृत किया जाना चाहिए । वादी द्वारा यह पक्षकथन किया गया कि उसके अधिवक्ता ने प्रतिवादी सं. 2 की मृत्यु के बारे में सूचित नहीं किया और जब उसे तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को न्यायालय में सूचना प्राप्त हुई साथ ही प्रतिवादी सं. 3 कल्याण द्वारा फाइल तारीख 5 अक्तूबर, 2005 के आवेदन के बारे में भी जानकारी हुई । यह पारदर्शी तौर पर गलत है और

इस प्रकार के तर्क का कोई लाभ नहीं है । न्यायालय के समक्ष पक्षकार का अधिवक्ता उस पक्षकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है और उसके अधिवक्ता की सूचना स्वयं पक्षकार की सूचना के समतुल्य होता है । यह मुकदमेबाज का कर्तव्य होता है कि वह स्वयं द्वारा संस्थित मामले में विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों की स्वयं सूचना रखे । इस मामले में वादी अशिक्षित ग्रामवासी नहीं है । वह शहर का निवासी प्रतीत होता है और उसने अपील में अपने पते को अच्छी तरह सूचित किया है, यह उपदर्शित करते हुए कि वह जगतपुरा, जयपुर का निवासी है । प्रतिपादना यह है कि अशिक्षित मुकदमेबाज को तकनीकी आधारों पर इनकार नहीं किया जा सकता जैसे परिसीमा अवधि, यह वादी के मामले में लागू नहीं होता है । वादी की गरीबी या अशिक्षित होने का कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया है । पूर्वोक्त के अतिरिक्त, विद्वान् विचारण न्यायालय ने भी यह उल्लेख किया है कि वादी का अधिवक्ता प्रत्येक अवसर पर मेरे समक्ष उपस्थित हुआ था और अतएव, वादी का यह अभिवाक् कि उसका अधिवक्ता समुचित तौर पर कार्य नहीं कर रहा था और उसने कालू की मृत्यु या उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए आवेदन फाइल करने की अपेक्षा के बारे में उसे सूचित नहीं किया, का अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार, वादी ने यह स्वीकार किया है कि उसके अधिवक्ता ने अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण उससे तारीख 22 सितम्बर, 2010 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की अपेक्षा की थी । वास्तव में, यदि वादी का अधिवक्ता वादी के मामले में उपेक्षापूर्वक कार्य कर रहा था तो वह अधिवक्ताओं की हड़ताल के दिन विचारण न्यायालय के समक्ष उससे उपस्थित होने की अपेक्षा नहीं करता । अभिलेख पर के तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वादी का अधिवक्ता पूर्ण दायित्व और तत्परतापूर्वक कार्य कर रहा था । विचारण न्यायालय के समक्ष वादी के पहले अधिवक्ता पर मिथ्या आरोप लगाने का प्रयास न्यायानुमत प्रतीत नहीं होता है । वास्तव में, इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी के लिए पर्याप्त कारण के अभाव के अलावा, मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि अपने पहले के अधिवक्ता की अकर्मण्यता के बारे में वादी द्वारा दिए गए विलम्ब की माफी के लिए आधार, सुस्पष्टतः तौर पर मिथ्या प्रतीत होता है । उपर्युक्त विस्तृत पहलुओं के अतिरिक्त अधिवक्ता की उपेक्षा सिद्ध करने के लिए विचारण न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष कोई तात्विक सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे

कि यह दर्शित हो कि वादी ने अपने अधिवक्ता के विरुद्ध कोई कार्रवाई की है । अधिवक्ताओं को आधारहीन और अप्रमाणीकृत अभिकथनों के आधार पर बलि का बकरा बनाने की इजाजत नहीं दी जा सकती है जो अभिलेख पर के तथ्यों के आमुख पर ही दिखाई देता है और उनपर अधिसंभाव्यताएं उद्भूत करता है । वादी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष अपने पहले के अधिवक्ता की ओर से उपेक्षा किए जाने के बारे में लिए गए अभिवाक् में कोई विश्वसनीयता नहीं है । विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों में सही ही इस पर अविश्वास किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी के लिए कोई पर्याप्त कारण दर्शित नहीं किया गया है । (पैरा 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील सं. 3994.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 43, नियम (1)(ट) के अधीन एस. बी. सिविल प्रकीर्ण अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री कमलेश पारिक

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री रामरख शर्मा

न्यायमूर्ति आलोक शर्मा – यह सिविल प्रकीर्ण अपील अपर जिला न्यायाधीश (त्वरित न्यायालय), दौसा द्वारा पारित तारीख 27 जनवरी, 2011 के आदेश के विरुद्ध पारित की गई है जिसके द्वारा उन्होंने अपीलार्थी-वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् "वादी" कहा गया है) द्वारा प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधिगण को अभिलेख पर लाने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22, नियम 4 के अधीन आवेदन फाइल करने के लिए विलम्ब माफी की ईप्सा करते हुए, परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन फाइल आवेदन को खारिज कर दिया था ।

2. मामले के तथ्य यह हैं कि वादी ने तारीख 24 फरवरी, 2003 के करार के विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद फाइल किया क्योंकि प्रतिवादी सं. 1 सोना बाई द्वारा प्रतिवादी सं. 2 से 11 के पक्ष में तारीख 17 मई, 2003 को निष्पादित त्यजन विलेख शून्य है तथा उसके अनुसरण में पारिणामिक नामांतरण को अपास्त करने के लिए भी वर्ष 2008 में एक वाद फाइल किया था । यह कथन किया गया है कि प्रतिवादी सं. 1 सोना बाई ने वाद में यथावर्णित कृषि भूमि में अपने अविभाजित हिस्से 1/18 के संबंध में वादी

के साथ तारीख 24 फरवरी, 2003 को एक करार किया था । किन्तु, तत्पश्चात् वादियों के अधिकारों को समाप्त करते हुए प्रतिवादी सं. 2 से 11 के पक्ष में तारीख 17 मई, 2003 को एक त्यजन विलेख निष्पादित किया । तारीख 17 मई, 2003 के त्यजन विलेख के आधार पर तारीख 5 जुलाई, 2003 को नामांतरण किया गया । वादी ने तारीख 24 फरवरी, 2003 के करार के अधीन अपनी बाध्यताओं को पूरा करने और निर्वहन करने के लिए हमेशा ही तैयार और रजामंद रहने का भी कथन किया है । किन्तु, यह अभिकथित है कि प्रतिवादी सोना बाई ने तारीख 24 फरवरी, 2003 के करार के अधीन अपनी बाध्यताओं का निर्वहन करने में कोई रुचि दर्शित नहीं की । अतएव, विनिर्दिष्ट पालन के लिए यह वाद फाइल किया गया ।

3. यह प्रतीत होता है कि वाद लम्बित रहने के दौरान प्रतिवादी कालू की तारीख 19 नवम्बर, 2008 को मृत्यु हो गई थी । इस तथ्य के बारे में सूचना वादी के विद्वान् काउंसेल ने विचारण न्यायालय के समक्ष तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को दी थी । मामला, तारीख 25 मार्च, 2009 को स्थगित हुआ था और उसके बाद तारीख 15 जुलाई, 2009 को स्थगित हुआ । तथापि, प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों, त्यजन विलेख के हिताधिकारी को अभिलेख पर लाने के लिए कोई कदम नहीं उठाए गए जिसे विचारण न्यायालय के समक्ष वादी द्वारा चुनौती दी गई थी । वादी की ओर से वाद में प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाए जाने में असफल रहने को ध्यान में रखते हुए प्रतिवादी सं. 3 कल्याण ने विचारण न्यायालय के समक्ष तारीख 5 दिसम्बर, 2009 को एक आवेदन फाइल किया, यह कथन करते हुए कि वादी द्वारा प्रतिवादी सं. 2 कालू की तारीख 19 नवम्बर, 2008 को मृत्यु होने के 90 दिनों के भीतर उसके विधिक प्रतिनिधियों को पक्षकार बनाए जाने में वादी की असफलता, तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को उसके काउंसेल को सूचना होने के बावजूद, को ध्यान में रखते हुए, वाद उपशमन होने के कारण खारिज किया जाता है । वादी द्वारा इस बारे में, तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को सूचना होने पर अथवा तारीख 5 दिसम्बर, 2009 को आवेदन फाइल करने पर कुछ भी नहीं किया गया ।

4. यह प्रतीत होता है कि इसके पश्चात् तारीख 22 सितम्बर, 2010 को अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण वादी स्वयं विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ था । यह कथन किया गया है कि उसके उपरान्त उसे प्रतिवादी सं. 2 कालू की मृत्यु के बारे में जानकारी हुई और इसके

तत्काल पश्चात् उसने प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी की ईप्सा करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के साथ परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन फाइल किया । तारीख 27 जनवरी, 2011 के आदेश द्वारा विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि कालू के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए आवेदन करने में हुए विलम्ब माफी की ईप्सा करते हुए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के साथ परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन फाइल आवेदन पूर्णतया अस्पष्टीकृत है और उक्त आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी देने के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं हैं । परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन फाइल आवेदन खारिज किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन भी खारिज हो जाता है । विनिर्दिष्ट पालन के लिए वाद का मौजूदा परिस्थितियों में उपशमन हो जाता है ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और विचारण न्यायालय द्वारा पारित तारीख 27 जनवरी, 2011 के आक्षेपित आदेश का परिशीलन किया ।

6. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि विद्वान् विचारण न्यायालय को मामले के तथ्यों में परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन को मंजूर कर लेना चाहिए था और इसी प्रकार, प्रतिवादी सं. 2 कालू के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए, सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22, नियम 4 के अधीन फाइल आवेदन को भी मंजूर कर लेना चाहिए था । उन्होंने यह निवेदन किया कि यद्यपि, वादी द्वारा सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन औपचारिक आवेदन नहीं किया गया था फिर भी विद्वान् विचारण न्यायालय को वाद का उपशमन अपास्त कर देना चाहिए था क्योंकि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन में एक विवक्षित प्रार्थना की गई थी । विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया कि वादी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष नियुक्त अधिवक्ता ने प्रतिवादी सं. 2 कालू की मृत्यु के बारे में वादी को सूचित नहीं किया था क्योंकि उसे तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को या प्रतिवादी सं. 3 कल्याण द्वारा फाइल उपशमन होने के कारण वाद खारिज होने की ईप्सा करते हुए फाइल तारीख 5 दिसम्बर, 2009 के आवेदन के समय पर ही सूचना प्राप्त हुई थी । यह निवेदन किया गया कि वादी को प्रतिवादी सं. 2

कालू की मृत्यु के बारे में जानकारी तारीख 22 सितम्बर, 2010 को ही हुई जब अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण वह विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुआ । उसके उपरान्त, उसने तत्काल ही प्रतिवादी सं. 2 कालू की मृत्यु होने पर उसके विधिक प्रतिनिधियों को प्रतिस्थापित करने के लिए आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी की ईप्सा करते हुए सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के साथ परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अधीन आवेदन फाइल किया ।

7. सुना गया । विचार किया गया ।

8. मेरे सुविचारित मत में, वादी के विद्वान् काउंसेल के निवेदन में कोई बल नहीं है । परिसीमा विधि एक वर्जन विधि है और लोक नीति पर आधारित है । निस्संदेह, उपचार लेने में विलम्ब को परिसीमा अधिनियम की धारा 5 के अधीन माफी दी जा सकती है, फिर भी न्यायालय की कृपा और विवेक का प्रयोग करने की ईप्सा रखने वाले पक्षकार द्वारा न्यायालय के समक्ष विलम्ब के लिए पर्याप्त कारण स्पष्टीकृत किया जाना चाहिए । वादी द्वारा यह पक्षकथन किया गया कि उसके अधिवक्ता ने प्रतिवादी सं. 2 की मृत्यु के बारे में सूचित नहीं किया और जब उसे तारीख 17 दिसम्बर, 2008 को न्यायालय में सूचना प्राप्त हुई साथ ही प्रतिवादी सं. 3 कल्याण द्वारा फाइल तारीख 5 अक्तूबर, 2005 के आवेदन के बारे में भी जानकारी हुई । यह पारदर्शी तौर पर गलत है और इस प्रकार के तर्क का कोई लाभ नहीं है । न्यायालय के समक्ष पक्षकार का अधिवक्ता उस पक्षकार के अभिकर्ता के रूप में कार्य करता है और उसके अधिवक्ता की सूचना स्वयं पक्षकार की सूचना के समतुल्य होता है । यह मुकदमेबाज का कर्तव्य होता है कि वह स्वयं द्वारा संस्थित मामले में विचारण न्यायालय के समक्ष कार्यवाहियों की स्वयं सूचना रखे । इस मामले में वादी अशिक्षित ग्रामवासी नहीं है । वह शहर का निवासी प्रतीत होता है और उसने अपील में अपने पते को अच्छी तरह सूचित किया है, यह उपदर्शित करते हुए कि वह जगतपुरा, जयपुर का निवासी है । प्रतिपादना यह है कि अशिक्षित मुकदमेबाज को तकनीकी आधारों पर इनकार नहीं किया जा सकता जैसे परिसीमा अवधि, यह वादी के मामले में लागू नहीं होता है । वादी की गरीबी या अशिक्षित होने का कोई सबूत प्रस्तुत नहीं किया गया है । पूर्वोक्त के अतिरिक्त, विद्वान् विचारण न्यायालय ने भी यह उल्लेख किया है कि वादी का अधिवक्ता प्रत्येक अवसर पर मेरे समक्ष उपस्थित हुआ था और अतएव, वादी का यह अभिवाक् कि उसका अधिवक्ता समुचित तौर पर कार्य नहीं कर रहा था और उसने कालू की मृत्यु या उसके विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के लिए आवेदन फाइल करने की अपेक्षा

के बारे में उसे सूचित नहीं किया, का अनुसमर्थन नहीं किया जा सकता है । इसी प्रकार, वादी ने यह स्वीकार किया है कि उसके अधिवक्ता ने अधिवक्ताओं की हड़ताल के कारण उससे तारीख 22 सितम्बर, 2010 को विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने की अपेक्षा की थी । वास्तव में, यदि वादी का अधिवक्ता वादी के मामले में उपेक्षापूर्वक कार्य कर रहा था तो वह अधिवक्ताओं की हड़ताल के दिन विचारण न्यायालय के समक्ष उससे उपस्थित होने की अपेक्षा नहीं करता । अभिलेख पर के तथ्यों से यह प्रकट होता है कि वादी का अधिवक्ता पूर्ण दायित्व और तत्परतापूर्वक कार्य कर रहा था । विचारण न्यायालय के समक्ष वादी के पहले अधिवक्ता पर मिथ्या आरोप लगाने का प्रयास न्यायानुमत प्रतीत नहीं होता है । वास्तव में, इस न्यायालय के समक्ष सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी के लिए पर्याप्त कारण के अभाव के अलावा, मामले के तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि अपने पहले के अधिवक्ता की अकर्मण्यता के बारे में वादी द्वारा दिए गए विलम्ब की माफी के लिए आधार, सुस्पष्टतः तौर पर मिथ्या प्रतीत होता है । उपर्युक्त विस्तृत पहलुओं के अतिरिक्त अधिवक्ता की उपेक्षा सिद्ध करने के लिए विचारण न्यायालय या इस न्यायालय के समक्ष कोई तात्विक सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है जिससे कि यह दर्शित हो कि वादी ने अपने अधिवक्ता के विरुद्ध कोई कार्रवाई की है । अधिवक्ताओं को आधारहीन और अप्रमाणीकृत अभिकथनों के आधार पर बलि का बकरा बनाने की इजाजत नहीं दी जा सकती है जो अभिलेख पर के तथ्यों के आमुख पर ही दिखाई देता है और उनपर अधिसंभाव्यताएं उद्भूत करता है । वादी द्वारा विचारण न्यायालय के समक्ष अपने पहले के अधिवक्ता की ओर से उपेक्षा किए जाने के बारे में लिए गए अभिवाक् में कोई विश्वसनीयता नहीं है । विचारण न्यायालय ने मामले के तथ्यों में सही ही इस पर अविश्वास किया और यह निष्कर्ष निकाला कि सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 22 के नियम 4 के अधीन आवेदन फाइल करने में हुए विलम्ब की माफी के लिए कोई पर्याप्त कारण दर्शित नहीं किया गया है ।

9. आक्षेपित आदेश में कोई त्रुटि, प्रतिकूलता या गलत निर्देश नहीं है ।

10. परिणामतः, मैं इस प्रकीर्ण अपील में कोई बल नहीं पाता हूं और इसलिए, इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

क.

खांडोकर अफिया सुलताना और अन्य

बनाम

पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य

तथा

अतीउल करीम

बनाम

पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य

तथा

अजहरउल करीम और अन्य

बनाम

पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य

तथा

नूपुर बानिक़ और अन्य

बनाम

पीठासीन अधिकारी, मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर और अन्य

तारीख 6 मई, 2014

न्यायमूर्ति आर. एस. चौहान

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 166 खंड (1) और खंड (2) – मोटर दुर्घटना – मृतक या आहत के अभिकर्ता या मुख्तारनामा धारक द्वारा दावा – अधिकारिता – मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण के समक्ष आवेदन फाइल कर सकता है जिसकी स्थानीय सीमाओं के भीतर वह निवास करता है या कारबार करता है – धारा 180 का ऐसा निर्वचन इसके प्रयोजन को विफल करने वाला हो, स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

याचियों ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर के समक्ष प्रतिकर के लिए दावा याचिकाएं फाइल की थी जो अधिकारिता के आधार पर लौटा दी गई थी । जिससे व्यथित होकर ये याचिकाएं फाइल की गईं । याचिकाएं मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – उपबंध का निर्वचन करते हुए धारा को संपूर्णतः पढ़ा जाएगा न कि खंडों में । अतः उपखंड (2) में प्रयुक्त "दावेदार" शब्द का निर्वचन ऐसे व्यक्तियों को ध्यान में रखकर करना होगा जिनका उपखंड (1) में उल्लेख है और जिन्हें प्रतिकर के लिए आवेदन फाइल करने का अधिकार दिया गया है । उपखंड (1) के अनुसार, आवेदन या तो उस व्यक्ति द्वारा फाइल किया जा सकता है जिसे क्षति पहुंची है या सम्पत्ति के स्वामी द्वारा, या मृतक के किसी या सभी विधिक प्रतिनिधियों द्वारा या हमारे समक्ष जैसे मामले में यथास्थिति "आहत व्यक्ति द्वारा विधिवत् रूप" से प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा या मृतक के सभी या किसी प्रतिनिधि द्वारा । इस प्रकार, मुख्तारनामा धारक दावा याचिका फाइल कर सकता है । मुख्तारनामा अधिनियम, 1882 की धारा 2 के अनुसार, मुख्तारनामा धारक दावेदार का स्थान ले सकता है । अतः उसने दावा याचिका उसकी स्वयं की निजी हैसियत में फाइल नहीं की है, अपितु दावेदार के रूप में की है । इस प्रकार, 1988 के अधिनियम की धारा 166 के उपखंड (2) में प्रयुक्त "दावेदार" शब्द उपखंड (1) में उल्लिखित व्यक्तियों के चार प्रवर्गों के रूप में निर्वचित किया जाएगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रेणियों में विधिवत् रूप से प्राधिकृत अभिकर्ता भी है । अतः "दावेदार" शब्द स्वतः मुख्तारनामा धारक में स्वतः सम्मिलित है । इसलिए, मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण की स्थानीय सीमाओं के भीतर दावा याचिका फाइल कर सकता है जिसकी अधिकारिता के भीतर वह रहता है या अपना व्यवसाय चलाता है । 1988 के अधिनियम की धारा 166 एक लाभकारी विधान है जिसका आशय दावेदार के लिए उस दावा अधिकरण के समक्ष अपनी दावा याचिका फाइल करने के लिए उसे आसान बनाना है जिसकी अधिकारिता के अधीन वह रहता है या व्यवसाय करता है या जिसकी अधिकारिता के भीतर प्रतिवादी रहता है या जिसकी अधिकारिता में दुर्घटना हुई थी । यदि विद्वान् अधिकरण द्वारा दिया गया निर्वचन स्वीकार किया जाए तो यह धारा 166 की लाभकारी प्रकृति को व्यर्थ बना देगा क्योंकि मूल दावेदार जिसने अन्य व्यक्ति के लिए मुख्तारनामा दिया है, आसानी से अपनी दावा याचिका फाइल करने के लिए सक्षम नहीं होगा अर्थात् मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण के समक्ष दावा याचिका फाइल करने लिए अनुज्ञात नहीं होगा जिसकी अधिकारिता के

अधीन वह रहता है या अपना व्यवसाय चलाता है । ऐसा निर्वचन जो धारा 166 के प्रयोजन को ही विफ़ल कर दे, स्पष्टतया अस्वीकार्य है । इसलिए, धारा 166 को समग्र रीति में पढ़ते हुए केवल यह निर्वचन निकाला जा सकता है कि मुख्तारनामा धारक को धारा 166 के उपखंड (2) में उल्लिखित दावेदार के रूप में यह विकल्प होगा और उस दावा अधिकरण के समक्ष दावा याचिका फाइल करने की स्थिति में होगी जिसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर वह रहता है या व्यवसाय करता या करती है । अतः विद्वान् अधिकरण द्वारा दिया गया निर्वचन गलत है । उपर्युक्त उल्लिखित कारणों से ये याचिकाएं एतद्द्वारा मंजूर की जाती हैं । तारीख 9 फरवरी, 2012 का आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और मामले को विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर को इस निदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया जाता है कि इस निर्णय की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तारीख से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर इस न्यायालय द्वारा निर्णय में अभिव्यक्त 1988 के अधिनियम की धारा 166 के निर्वचन को ध्यान में रखते हुए मामले का नए सिरे से विनिश्चय करे । (पैरा 8, 9 और 10)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2008]	2008 ए. सी. जे. 1709 : **श्रीमती कुसुम देवी और अन्य** बनाम **डूंगा राम और अन्य** ।	9

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 18604, 2013 की सं. 8812, 2013 की सं. 18561 और 2013 की सं. 18613.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन सिविल रिट याचिकाएं ।

याचियों की ओर से श्री विनय माथुर

प्रत्यर्थी की ओर से श्री रिज़वान अहमद

न्यायमूर्ति आर. एस. चौहान – चूंकि ये याचिकाएं एक ही आक्षेपित निर्णय से उद्भूत हुई हैं और इस न्यायालय द्वारा इनमें अन्तर्वलित एक जैसे विवाद्यकों का विनिश्चय किया जाना है, इसलिए इन याचिकाओं को एक साथ सुना गया और इस सामान्य निर्णय द्वारा विनिश्चय किया जा रहा है ।

2. याची-दावेदार मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर द्वारा तारीख 9 फरवरी, 2012 को पारित उस अधिनिर्णय से व्यथित हुए हैं जिसके द्वारा विद्वान् अधिकरण ने यह निदेश दिया है कि दावा याचिकाएं प्रकटतः इस आधार पर याचियों को वापस लौटाई जाती हैं कि अधिकरण के पास दावा याचिकाएं सुनने के लिए क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं है ।

3. मामले के संक्षिप्त तथ्य ये हैं कि याची-दावेदार ढाका, बांग्लादेश में रहते हैं । तारीख 17 फरवरी, 1997 को, दावेदार अपने अन्य रिश्तेदारों के साथ हज़रत ख्वाजा मोइनुद्दीन हसन चिश्ती के पवित्र मक़बरे के दर्शन के लिए अजमेर आए थे । तारीख 18 फरवरी, 1997 को दर्शन करने के बाद वे वापस अजमेर से जयपुर जा रहे थे । जब वे गांव मोखमपुरा, तहसील दुदू, जिला जयपुर पहुंचे तो अचानक एक बस जिसकी रजिस्ट्रेशन सं. आर जे 14-पी-2218 है और जो उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाई जा रही थी, विपरीत दिशा से आई और उस मेटाडोर को टक्कर मारी जिसमें दावेदार और उसके रिश्तेदार यात्रा कर रहे थे । परिणामस्वरूप घटनास्थल पर ही तीन व्यक्तियों की मृत्यु हो गई और अन्य को गंभीर क्षतियां पहुंचीं । चूंकि दावेदारों ने अपने परिवार के सदस्यों को खो दिया था और अन्य को क्षतियां पहुंचीं थीं इसलिए उन्होंने दावा याचिकाएं फाइल करने का विनिश्चय किया । तथापि, चूंकि वे बांग्लादेश के निवासी थे, इसलिए वे पवित्र मक़बरे पर खादिम जान मोहम्मद चिश्ती के सिवाय अन्य किसी को नहीं जानते थे और उनके माध्यम से अजमेर में विधि व्यवसायी (अधिवक्ता) श्री रमेश धभई से सम्पर्क किया । अतः, अपने विधिक उपचार में पैरवी करने के उद्देश्य से, याचियों को जान मोहम्मद चिश्ती और रमेश धभई दोनों को मुख्तारनामा दिया । परिणामस्वरूप जान मोहम्मद चिश्ती ने याचियों और अन्यों की ओर से अनेक दावा याचिकाएं फाइल कीं । सभी दावा याचिकाओं का अपर जिला न्यायाधीश (फास्ट ट्रैक) सं. 4, अजमेर द्वारा तारीख 26 फरवरी, 2011 के अधिनिर्णय द्वारा विनिश्चय किया गया । विद्वान् न्यायाधीश ने इस आधार पर दावा याचिकाएं वापस कीं कि न्यायालय के पास दावा याचिकाएं सुनने की क्षेत्रीय अधिकारिता नहीं है । चूंकि याची और अन्य उक्त निर्णय से व्यथित हुए थे इसलिए उन्होंने इस न्यायालय के समक्ष उसे चुनौती दी है । इस न्यायालय ने तारीख 10 मई, 2011 के अधिनिर्णय द्वारा विद्वान् अधिकरण से मामला प्रतिप्रेषित किया । दोनों पक्षकारों को सुनने के पश्चात्, विद्वान् अधिकरण ने तारीख 9 फरवरी, 2012 के निर्णय द्वारा अपने पूर्व

निर्णय को कायम रखा और पुनः दावा याचिकाएं याचियों को वापस लौटा दीं । अतः इस न्यायालय के समक्ष यह याचिका पेश की गई है ।

4. याचियों की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री विनय माथुर ने प्रबलता से यह दलील दी है कि विद्वान् अधिकरण ने आक्षेपित आदेश पारित करते हुए मोटर यान अधिनियम, 1988 (जिसे संक्षिप्त में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 166(1)(घ) की उपेक्षा की है । उक्त उपबंध के अनुसार प्रतिकर के लिए आवेदन ऐसे किसी एजेंट द्वारा फाइल किया जा सकता है जो आहत व्यक्तियों की ओर से या मृतक के विधिक प्रतिनिधियों यथास्थिति द्वारा प्राधिकृत किया गया हो । इसके अलावा अधिनियम की धारा 166 के उपखंड (2) के अनुसार, दावेदार के लिए यह विकल्प खुला है कि वह अपनी दावा याचिका उस अधिकरण के समक्ष फाइल करे जिस क्षेत्रीय अधिकारिता के अन्दर दुर्घटना हुई थी या उस दावा अधिकरण के समक्ष फाइल करे जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमा के भीतर वह रहता है या व्यवसाय करता है या जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर प्रतिवादी रहता है । चूंकि जान मोहम्मद चिश्ती अजमेर का निवासी है, इसलिए वह "दावेदार" के रूप में विद्वान् अधिकरण, अजमेर के समक्ष दावा याचिकाएं फाइल कर सकता है । अतः, विद्वान् अधिकरण द्वारा निकाला गया निष्कर्ष गलत है । अतः दावा याचिकाओं की वापसी का आदेश विधिक रूप से कायम रखे जाने योग्य है ।

5. दूसरी ओर प्रत्यर्थी-बीमा कंपनी की ओर से विद्वान् काउंसेल श्री रिज़वान अहमद ने यह दलील दी है कि अधिनियम की धारा 166 दो भागों में विभाजित है, अर्थात् उपखंड (1) और उपखंड (2) । उपखंड (1) में "विधिवत् रूप से प्राधिकृत कोई एजेंट" का उल्लेख है, जबकि उपखंड (2) में ऐसे शब्दों का प्रयोग नहीं है और केवल "दावेदार" शब्दों का प्रयोग होता है । इसलिए, उपखंड (2) में दिया गया विकल्प "दावेदार" के लिए उपलब्ध है, तथापि, "दावेदार द्वारा विधिवत् रूप से प्राधिकृत एजेंट" को नहीं । अतः उपखंड (2) के अनुसार, मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण के समक्ष दावा याचिका संस्थित करने के लिए कर्तव्याबद्ध है जिसकी अधिकारिता के अधीन दुर्घटना हुई है, या जिसकी अधिकारिता के अधीन दावेदार रहता है, या अपना व्यवसाय चलाता है या जिसकी अधिकारिता में प्रतिवादी रहता है । किन्तु मुख्तारनामा धारक उस स्थान में दावा याचिका फाइल नहीं कर सकता जहां वह स्वयं रहता है या रहती है । अतः, विद्वान् अधिकरण ने दावा याचिका ठीक ही वापस

की है । अतः विद्वान् काउंसेल ने आक्षेपित निर्णय का समर्थन किया है ।

6. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और आक्षेपित निर्णय का परिशीलन किया ।

7. अधिनियम की धारा 166 इस प्रकार है :–

"**166. प्रतिकर के लिए आवेदन –** (1) धारा 165 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रकार की दुर्घटना से उद्भूत प्रतिकर के लिए आवेदन निम्नलिखित द्वारा किया जा सकेगा, अर्थात् –

(क) उस व्यक्ति द्वारा, जिसे क्षति हुई है ; या

(ख) संपत्ति के स्वामी द्वारा ; या

(ग) जब दुर्घटना के परिणामस्वरूप मृत्यु हुई है, तब मृतक के सभी या किसी विधिक प्रतिनिधि द्वारा ; या

(घ) जिस व्यक्ति को क्षति पहुंची है उसके द्वारा अथवा सम्यक् रूप से प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा अथवा मृतक के सभी या किसी विधिक प्रतिनिधि द्वारा :

परन्तु जहां प्रतिकर के लिए किसी आवेदन में मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं हुए हैं वहां वह आवेदन मृतक के सभी विधिक प्रतिनिधियों की ओर से या उनके फायदे के लिए किया जाएगा और जो विधिक प्रतिनिधि ऐसे सम्मिलित नहीं हुए हैं उन्हें आवेदन के प्रत्यर्थियों के रूप में पक्षकार बनाया जाएगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन उस दावा अधिकरण को किया जाएगा जिसकी उस क्षेत्र पर अधिकारिता है जिसमें दुर्घटना हुई थी और वह ऐसे प्ररूप में होगा और उसमें ऐसी विशिष्टियां होंगी जो विहित की जाएं :

परन्तु जहां ऐसे आवेदन में धारा 140 के अधीन प्रतिकर के लिए कोई दावा किया जाता है, वहां आवेदन में आवेदक के हस्ताक्षर के ठीक पूर्व इस आशय का एक पृथक् कथन होगा ।

(3) ....

(4) जहां किसी पुलिस अधिकारी ने किसी दुर्घटना की बाबत रिपोर्ट की प्रतिलिपि इस अधिनियम के अधीन दावा अधिकरण को फाइल कर दी

हो, वहां दावा अधिकरण, यदि वह ऐसा करना आवश्यक समझता है तो, उस रिपोर्ट की बाबत यह मानेगा मानो वह इस अधिनियम के अधीन प्रतिकर के लिए आवेदन है ।"

8. उपबंध का निर्वचन करते हुए धारा को संपूर्णतः पढ़ा जाएगा न कि खंडों में । अतः उपखंड (2) में प्रयुक्त "दावेदार" शब्द का निर्वचन ऐसे व्यक्तियों को ध्यान में रखकर करना होगा जिनका उपखंड (1) में उल्लेख है और जिन्हें प्रतिकर के लिए आवेदन फाइल करने का अधिकार दिया गया है । उपखंड (1) के अनुसार, आवेदन या तो उस व्यक्ति द्वारा फाइल किया जा सकता है जिसे क्षति पहुंची है या सम्पत्ति के स्वामी द्वारा, या मृतक के किसी या सभी विधिक प्रतिनिधियों द्वारा या हमारे समक्ष जैसे मामले में यथास्थिति "आहत व्यक्ति द्वारा विधिवत् रूप" से प्राधिकृत किसी अभिकर्ता द्वारा या मृतक के सभी या किसी प्रतिनिधि द्वारा । इस प्रकार, मुख्तारनामा धारक दावा याचिका फाइल कर सकता है । मुख्तारनामा अधिनियम, 1882 की धारा 2 के अनुसार, मुख्तारनामा धारक दावेदार का स्थान ले सकता है । अतः उसने दावा याचिका उसकी स्वयं की निजी हैसियत में फाइल नहीं की है, अपितु दावेदार के रूप में की है । इस प्रकार, 1988 के अधिनियम की धारा 166 के उपखंड (2) में प्रयुक्त "दावेदार" शब्द उपखंड (1) में उल्लिखित व्यक्तियों के चार प्रवर्गों के रूप में निर्वचित किया जाएगा । यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि श्रेणियों में विधिवत् रूप से प्राधिकृत अभिकर्ता भी है । अतः "दावेदार" शब्द स्वतः मुख्तारनामा धारक में स्वतः सम्मिलित है । इसलिए, मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण की स्थानीय सीमाओं के भीतर दावा याचिका फाइल कर सकता है जिसकी अधिकारिता के भीतर वह रहता है या अपना व्यवसाय चलाता है ।

9. इस न्यायालय ने **श्रीमती कुसुम देवी और अन्य** बनाम **डूंगा राम और अन्य**[1] वाले मामले में इस तथ्य की अवेक्षा की कि धारा 166 सिविल प्रक्रिया संहिता से स्पष्टतया भिन्न है जो संहिता की धारा 16 से 20 के बारे में उपबंध करती है और उसके प्रयोग को बताती है । 1988 के अधिनियम की धारा 166 एक लाभकारी विधान है जिसका आशय दावेदार के लिए उस दावा अधिकरण के समक्ष अपनी दावा याचिका फाइल करने के लिए उसे आसान

---

[1] 2008 ए. सी. जे. 1709.

बनाना है जिसकी अधिकारिता के अधीन वह रहता है या व्यवसाय करता है या जिसकी अधिकारिता के भीतर प्रतिवादी रहता है या जिसकी अधिकारिता में दुर्घटना हुई थी । यदि विद्वान् अधिकरण द्वारा दिया गया निर्वचन स्वीकार किया जाए तो यह धारा 166 की लाभकारी प्रकृति को व्यर्थ बना देगा क्योंकि मूल दावेदार जिसने अन्य व्यक्ति के लिए मुख्तारनामा दिया है, आसानी से अपनी दावा याचिका फाइल करने के लिए सक्षम नहीं होगा अर्थात् मुख्तारनामा धारक उस दावा अधिकरण के समक्ष दावा याचिका फाइल करने लिए अनुज्ञात नहीं होगा जिसकी अधिकारिता के अधीन वह रहता है या अपना व्यवसाय चलाता है । ऐसा निर्वचन जो धारा 166 के प्रयोजन को ही विफ़ल कर दे, स्पष्टतया अस्वीकार्य है । इसलिए, धारा 166 को समग्र रीति में पढ़ते हुए केवल यह निर्वचन निकाला जा सकता है कि मुख्तारनामा धारक को धारा 166 के उपखंड (2) में उल्लिखित दावेदार के रूप में यह विकल्प होगा और उस दावा अधिकरण के समक्ष दावा याचिका फाइल करने की स्थिति में होगी जिसकी स्थानीय अधिकारिता के भीतर वह रहता है या व्यवसाय करता या करती है । अतः विद्वान् अधिकरण द्वारा दिया गया निर्वचन गलत है ।

10. उपर्युक्त उल्लिखित कारणों से ये याचिकाएं एतद्द्वारा मंजूर की जाती हैं । तारीख 9 फरवरी, 2012 का आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है और मामले को विद्वान् मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, अजमेर को इस निदेश के साथ प्रतिप्रेषित किया जाता है कि इस निर्णय की प्रमाणित प्रति की प्राप्ति की तारीख से तीन सप्ताह की अवधि के भीतर इस न्यायालय द्वारा निर्णय में अभिव्यक्त 1988 के अधिनियम की धारा 166 के निर्वचन को ध्यान में रखते हुए मामले का नए सिरे से विनिश्चय करे ।

याचिकाएं मंजूर की गईं ।

मही./मह.

गीता कंवर (श्रीमती)

बनाम

राज्य और अन्य

तारीख 29 मई, 2014

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफ़ीक

राजस्थान के मृतक सरकारी सेवक के आश्रितों की अनुकंपा नियुक्ति नियम, 1996 – नियम 5 (2) – मृतक के आश्रितों में से एक की अनुकंपा नियुक्ति – नियुक्त व्यक्ति द्वारा यह वचनबंध दिया जाना कि वह मृतक के अन्य आश्रितों का भरणपोषण करेगी – इस आधार पर भरणपोषण करने से इनकार कि दावेदार को पेंशन प्राप्त होती है – नियमों के अनुसार अनुकंपा के आधार पर नियुक्त व्यक्ति कुटुम्ब के सदस्यों का भरणपोषण करने से इस आधार पर इनकार नहीं कर सकता कि दावेदार को अन्य स्त्रोत से आय प्राप्त होती है – नियुक्त व्यक्ति वचनबंध के अनुसार मृतक के आश्रितों का भरणपोषण करने के लिए दायित्वाधीन है ।

प्रत्यर्थी सं. 4 की अनुकंपा नियुक्ति इस वचनबंध के आधार पर की गई थी कि वह मृतक सरकारी सेवक के कुटुम्ब के अन्य सदस्यों का भरणपोषण करेगी । प्रत्यर्थी सं. 4 ने याची का भरणपोषण बन्द कर दिया । अतः याची गीता कंवर द्वारा संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन वर्तमान रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 4 को यह वचनबंध देने पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी गई थी कि वह मृतक सरकारी सेवक के कुटुंब के अन्य सदस्यों का, जो मृतक सरकारी सेवक पर निर्भर थे, भरणपोषण करेगी और याची विधवा होने के कारण, प्रत्यर्थी सं. 4 से सहायता प्राप्त करने के लिए पूर्णतया हकदार है । तीन आश्रितों में से दो का विवाह हो गया है और तीसरे की इलाहाबाद बैंक में नियुक्ति हो गई है और इसलिए वह याची से किसी प्रकार की वित्तीय सहायता का दावा करने की हकदार नहीं हो सकती । किन्तु यह बात प्रत्यर्थी सं. 4 के लिए याची का भरणपोषण करने या अन्यथा उसके भरणपोषण से इनकार करने

के लिए एक कारण नहीं हो सकती । यद्यपि याची 6,555/- रुपए या याची के अनुसार 4,500/- रुपए की धनराशि प्राप्त करती है जैसा कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा दावा किया गया है तथापि, प्रत्यर्थी फिर भी उसके भरणपोषण के लिए आबद्ध होगी । यदि दूसरे दृष्टिकोण से मामले की परीक्षा की जाए तो जहां उसकी चार पुत्रियां हैं और उनमें से दो सेवा में नहीं हैं और अब विवाहित हैं और एक सबसे छोटी जिसकी इलाहाबाद बैंक में नियुक्ति होना बताया गया है, उसका विवाह हो जाता है तो वह किसी भी दशा में प्रत्यर्थी सं. 4 याची की सहायता अनुपातिक रूप में करने के लिए बाध्य है क्योंकि उसकी नियुक्ति पूर्णतया 1996 के नियमों के नियम 5(2) के निबंधनों में उपरोक्त तथ्य के लिए विभाग द्वारा उसके द्वारा दिए गए लिखित शपथ-पत्र के आधार पर दी गई है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित है कि उक्त नियमों के अधीन नियुक्ति उस शर्त पर दी जाएगी कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया व्यक्ति परिवार के उन अन्य सदस्यों का उचित रूप से भरणपोषण करेगा, जो मृतक सरकारी सेवक पर निर्भर हैं और इस आशय का लिखित में एक शपथ-पत्र प्रस्तुत करेगी । नियम यह भी उपबंध करता है कि यदि बाद में किसी प्रक्रम पर यह साबित हो जाता है कि ऐसे निर्भर परिवार के सदस्यों की उपेक्षा की जा रही है या उसके द्वारा भरणपोषण नहीं किया जा रहा है तो नियुक्ति प्राधिकारी अनुकंपा पर नियुक्त किए गए व्यक्ति को एक अवसर प्रदान करने के बाद नियुक्ति समाप्त करने के लिए इस बाबत कारण बताओ सूचना जारी कर सकता है कि क्यों न उसकी सेवा समाप्त की जाए । वस्तुतः विभाग ने प्रत्यर्थी सं. 4 को कारण बताओ सूचना जारी करके यह पूछा था कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा याची का भरणपोषण करने में असफल रहने के कारण उसकी नियुक्ति क्यों न समाप्त की जाए । यह अलग बात है कि अभी तक विभाग ने नियुक्ति रद्द करने की प्रक्रिया आरंभ नहीं की है किन्तु यदि विभाग उक्त नियुक्ति को रद्द कर देता तो उसके पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त कारण था । पैतृक भूमि के संबंध में विवाद का प्रत्यर्थी सं. 4 से याची द्वारा भरणपोषण का दावा करने की हक़दारी से कोई संबंध नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 4 को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी गई थी । इन परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी सं. 4 का यह दायित्व है कि वह अपनी परिलब्धियों में से जो कि उसे नियुक्ति से प्राप्त होती हैं, याची को उसके भरणपोषण के लिए युक्तियुक्त धनराशि का संदाय करे । यदि प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 को

यह निदेश दिया जाए कि वे प्रत्यर्थी सं. 4 को संदेय कुल परिलब्धियों से न्यूनतम 1/4 भाग काटकर याची को तब तक जब तक कि वह जीवित रहती है, माह-दर-माह आधार पर संदाय करें तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा और यह धनराशि सीधे उसके बैंक खाते में, जिसका खाता संख्या वह आज से चार सप्ताह के भीतर विभाग को सूचित करेगी, जमा की जाए । (पैरा 6 और 7)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 3117.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन सिविल रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री आर. एस. भारद्वाज

राज्य की ओर से श्री शिव राज सिंह

प्रत्यर्थी सं. 4 की ओर से श्री अमित जिंदल

न्यायमूर्ति मोहम्मद रफ़ीक – यह याची और उसकी स्वयं की पुत्री के बीच दुर्भाग्यपूर्ण विवाद है, जिसमें राजस्थान के मृतक सरकारी सेवक के आश्रितों की अनुकंपा नियुक्ति नियम, 1996 के नियम 5(2) के निबंधनों में लिखित में यह वचनबंध देने पर कि वह याची और परिवार के अन्य सदस्यों का, जो मृतक सरकारी सेवक पर निर्भर थे, ठीक से भरणपोषण करेगी, अनुकंपा नियुक्ति दी गई थी । तथापि, अब उसने याची के भरणपोषण से इनकार कर दिया है ।

2. याची के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि याची, मृतक सरकारी सेवक गोविन्द दान सिंह की विधवा है, जो सरकार की राजस्थान शस्त्र पुलिस (आर. ए. सी.) में रसोईया के रूप में सेवा कर रहा था और उसकी तारीख 30 दिसम्बर, 1999 को सेवा करते हुए मृत्यु हो गई । उस समय याची विधवा के अतिरिक्त, याची की चार पुत्रियां थीं जिसमें प्रत्यर्थी सं. 4 सम्मिलित है । याची ने अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति करने के लिए प्रत्यर्थी सं. 4 जतन कंवर के नाम का प्रस्ताव दिया था । प्रत्यर्थी सं. 4 जतन कंवर ने इस वचनपत्र के साथ शपथ-पत्र फाइल किया था कि वह याची और परिवार के अन्य सदस्यों का ठीक से भरणपोषण करेगी । प्रत्यर्थी सं. 4 को अवर श्रेणी लिपिक के रूप में नियुक्ति दी गई थी और उस समय वह अविवाहित थी । प्रत्यर्थी सं. 4 जतन कंवर काफी समय से याची

और परिवार के अन्य सदस्यों के साथ रह रही थी, तब तक कोई समस्या नहीं थी किन्तु उसकी 2007 में शादी हो जाने के बाद, उसने याची और परिवार के अन्य सदस्यों का भरणपोषण करना बंद कर दिया । इसलिए याची ने भरणपोषण के लिए सक्षम प्राधिकारी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया । याची के आवेदन पर तारीख 9 मई, 2011 को विभाग द्वारा प्रत्यर्थी सं. 4 को कारण बताओ सूचना जारी की गई थी और उसे मृतक सरकारी सेवक के आश्रितों को भरणपोषण देने की सलाह दी गई थी । इस मामले में जांच तारीख 23 मई, 2011 को श्री राकेश कुमार, विशेष कार्य अधिकारी और श्री गणेश कुमार गुप्ता, सहायक लेखा अधिकारी को सौंपी गई । पक्षकारों के बीच विवाद अनसुलझा बना रहा । इसके पश्चात् तारीख 17 जून, 2011 को निदेशक और उप सचिव, भाषा और पुस्तकालय विभाग ने प्रत्यर्थी सं. 4 को मृतक सरकारी सेवक के आश्रितों को उचित रूप से भरणपोषण देने के लिए आदेश करते हुए कारण बताओ सूचना जारी की और यह सलाह दी कि यदि भविष्य में उसकी शिकायत प्राप्त होती है तो उसकी नियुक्ति रद्द की जा सकती है । तत्पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 4 याची को 2,000/- रुपए प्रतिमास संदाय करने को सहमत हो गई किन्तु जब उसने ऐसा नहीं किया तो यह रिट याचिका फाइल की गई ।

3. प्रत्यर्थी सं. 4 के विद्वान् काउंसेल श्री अमित जिंदल ने यह दलील दी है कि पक्षकारों के बीच उपर्युक्त रूप में समझौता हो गया और प्रत्यर्थी सं. 4 याची को 2,000/- रुपए प्रतिमास संदाय करेगी किन्तु तत्पश्चात् पक्षकारों के बीच पुनः विवाद हो गया है । याची ने प्रत्यर्थी सं. 4 के विरुद्ध एक झूठा दाण्डिक मामला दर्ज करा दिया है कि उसने अपना पैतृक घर विक्रीत कर दिया है और उसने धनराशि प्राप्त करके अपने पास रख ली है । तथापि, वास्तविकता यह है कि प्रत्यर्थी सं. 4 ने स्वयं की अपनी निधि से घर क्रय किया है । प्रत्यर्थी सं. 4 को इस आधार पर अग्रिम जमानत मिल गई है ।

4. प्रत्यर्थी सं. 4 के विद्वान् काउंसेल श्री अमित जिंदल ने यह दलील दी है कि प्रत्यर्थी सं. 4 ने अपनी बड़ी बहन और एक छोटी बहन के विवाह में तथा अपने स्वयं के विवाह में अपनी जमा धनराशि खर्च की है । याची की सबसे छोटी पुत्री की इलाहाबाद बैंक में अधिकारी के रूप में नियुक्ति हो गई है जो अभी अविवाहित है । इस प्रकार, अब प्रत्यर्थी सं. 4 से याची को भरणपोषण लेने की आवश्यकता नहीं है । इसके अतिरिक्त याची को

कुटुंब पेंशन के रूप में 6,555/- रुपए प्रतिमास मिलते हैं याची के पास और 98 बीघा पैतृक भूमि कृषि भी है और इसलिए वह उक्त कृषि भूमि से आय प्राप्त करके स्वयं का भली प्रकार भरणपोषण कर सकती है ।

5. याची के विद्वान् काउंसेल श्री आर. एस. भारद्वाज ने प्रत्युत्तर में यह दलील दी है कि याची को कुटुंब पेंशन के रूप में 4,500/- रुपए की धनराशि प्राप्त होती है न कि 6,555/- रुपए और इसलिए इस कारण से भरणपोषण के संदाय को रोकना न्यायोचित नहीं है कि याची की सबसे छोटी पुत्री की इलाहाबाद बैंक में नियुक्ति हो गई है क्योंकि उसके विवाह के बाद याची की देख-भाल करने के लिए कोई नहीं रहेगा ।

6. इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए कि प्रत्यर्थी सं. 4 को यह वचनबंध देने पर अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी गई थी कि वह मृतक सरकारी सेवक के कुटुंब के अन्य सदस्यों का, जो मृतक सरकारी सेवक पर निर्भर थे, भरणपोषण करेगी और याची विधवा होने के कारण, प्रत्यर्थी सं. 4 से सहायता प्राप्त करने के लिए पूर्णतया हकदार है । तीन आश्रितों में से दो का विवाह हो गया है और तीसरे की इलाहाबाद बैंक में नियुक्ति हो गई है और इसलिए वह याची से किसी प्रकार की वित्तीय सहायता का दावा करने की हकदार नहीं हो सकती । किन्तु यह बात प्रत्यर्थी सं. 4 के लिए याची का भरणपोषण करने या अन्यथा उसके भरणपोषण से इनकार करने के लिए एक कारण नहीं हो सकती । यद्यपि याची 6,555/- रुपए या याची के अनुसार 4,500/- रुपए की धनराशि प्राप्त करती है जैसा कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा दावा किया गया है तथापि, प्रत्यर्थी फिर भी उसके भरणपोषण के लिए आबद्ध होगी । यदि दूसरे दृष्टिकोण से मामले की परीक्षा की जाए तो जहां उसकी चार पुत्रियां हैं और उनमें से दो सेवा में नहीं हैं और अब विवाहित हैं और एक सबसे छोटी जिसकी इलाहाबाद बैंक में नियुक्ति होना बताया गया है, उसका विवाह हो जाता है तो वह किसी भी दशा में प्रत्यर्थी सं. 4 याची की सहायता अनुपातिक रूप में करने के लिए बाध्य है क्योंकि उसकी नियुक्ति पूर्णतया 1996 के नियमों के नियम 5(2) के निबंधनों में उपरोक्त तथ्य के लिए विभाग द्वारा उसके द्वारा दिए गए लिखित शपथपत्र के आधार पर दी गई है जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह उपबंधित है कि उक्त नियमों के अधीन नियुक्ति उस शर्त पर दी जाएगी कि अनुकंपा के आधार पर नियुक्त किया गया व्यक्ति परिवार के उन अन्य सदस्यों का उचित रूप से भरणपोषण करेगा, जो मृतक सरकारी सेवक पर निर्भर हैं

और इस आशय का लिखित में एक शपथपत्र प्रस्तुत करेगी । नियम यह भी उपबंध करता है कि यदि बाद में किसी प्रक्रम पर यह साबित हो जाता है कि ऐसे निर्भर परिवार के सदस्यों की उपेक्षा की जा रही है या उसके द्वारा भरणपोषण नहीं किया जा रहा है तो नियुक्ति प्राधिकारी अनुकंपा पर नियुक्त किए गए व्यक्ति को एक अवसर प्रदान करने के बाद नियुक्ति समाप्त करने के लिए इस बाबत कारण बताओ सूचना जारी कर सकता है कि क्यों न उसकी सेवा समाप्त की जाए । वस्तुतः विभाग ने प्रत्यर्थी सं. 4 को कारण बताओ सूचना जारी करके यह पूछा था कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा याची का भरणपोषण करने में असफल रहने के कारण उसकी नियुक्ति क्यों न समाप्त की जाए । यह अलग बात है कि अभी तक विभाग ने नियुक्ति रद्द करने की प्रक्रिया आरंभ नहीं की है किन्तु यदि विभाग उक्त नियुक्ति को रद्द कर देता तो उसके पास ऐसा करने के लिए पर्याप्त कारण था । पैतृक भूमि के संबंध में विवाद का प्रत्यर्थी सं. 4 से याची द्वारा भरणपोषण का दावा करने की हक़दारी से कोई संबंध नहीं है क्योंकि प्रत्यर्थी सं. 4 को अनुकंपा के आधार पर नियुक्ति दी गई थी ।

7. इन परिस्थितियों में, प्रत्यर्थी सं. 4 का यह दायित्व है कि वह अपनी परिलब्धियों में से जो कि उसे नियुक्ति से प्राप्त होती हैं, याची को उसके भरणपोषण के लिए युक्तियुक्त धनराशि का संदाय करे । यदि प्रत्यर्थी सं. 1 से 3 को यह निदेश दिया जाए कि वे प्रत्यर्थी सं. 4 को संदेय कुल परिलब्धियों से न्यूनतम 1/4 भाग काटकर याची को तब तक जब तक कि वह जीवित रहती है, माह-दर-माह आधार पर संदाय करें तो न्याय का उद्देश्य पूरा हो जाएगा और यह धनराशि सीधे उसके बैंक खाते में, जिसका खाता संख्या वह आज से चार सप्ताह के भीतर विभाग को सूचित करेगी, जमा की जाए ।

8. तद्नुसार रिट याचिका मंजूर की जाती है ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मही./मह.

त्रिलोक सिंह

बनाम

नरदीप सिंह

तारीख 26 मार्च, 2013

न्यायमूर्ति त्रिलोक सिंह चौहान

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 28, नियम 9 और धारा 151 – पूर्व में वाद भूमि के सीमांकन के संबंध में स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति और रिपोर्ट – न्यायालय द्वारा नियुक्ति करने से इनकार – न्यायोचित्य – यह न्यायालय का विवेकाधिकार है कि वह मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करते हुए आयुक्त की नियुक्ति के लिए आदेश पारित करे अथवा इनकार करे – जहां ऐसे आवेदन का आशय मामले को विलंबित करना हो वहां न्यायालय द्वारा आयुक्त की पुनः नियुक्ति से इनकार करना न्यायोचित है ।

याची द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल वर्तमान याचिका सिविल वाद सं. 153/206 में सी. एम. ए. सं. 263/2013 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), नादौन, जिला हमीरपुर द्वारा तारीख 19 अक्तूबर, 2013 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा स्थानीय आयुक्त के रूप में राजस्व विशेषज्ञ की नियुक्ति के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 26, नियम 9 के अधीन याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है । याची ने तारीख 19 अक्तूबर के आक्षेपित आदेश को अभिखण्डित करने और अपास्त करने और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 26, नियम 9 के अधीन आवेदन को मंजूर करने का अनुरोध किया है । विचारण न्यायालय द्वारा आवेदन खारिज कर दिया गया । अतः यह सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका फाइल की गई । रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि याची का वाद इस आशय का है कि प्रत्यर्थी का मुर्गी पालन खसरा सं. 783 के ऊपर

स्थित है जिससे उपताप हो रहा है । याची के पक्षकथन में यह कहीं नहीं है कि विभिन्न खसरा संख्याओं के ऊपर स्थित प्रत्यर्थी के चार मुर्गी पालनों से उपताप कारित हो रहा है । अतः न्यायालय यह समझने में असमर्थ है कि मामले में और स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए यह आवेदन कैसे और किस रीति में फाइल किया गया है जो वाद में विवाद्यक ही नहीं है । जब एक बार विचारण न्यायालय द्वारा स्थानीय आयुक्त को पहले ही नियुक्त किया जा चुका था, तब न्यायालय को ऐसा प्रतीत नहीं होता कि स्थानीय आयुक्त को दूसरी बार क्यों नियुक्त किया जाना चाहिए । वस्तुतः पक्षकारों द्वारा साक्ष्य पहले ही पेश किया जा चुका है और उस समय मामला दलीलों के प्रक्रम पर था जब यह आवेदन फाइल किया गया था । यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि आवेदन सद्भाविक नहीं था और वाद के निर्णय को विलंबित करने के प्रयोजन से फाइल किया गया था । विधि की सुस्थापित स्थिति को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है । (पैरा 4 और 6)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2001]	2001 की आर. एस. ए. सं. 461, तारीख 24 मार्च, 2014 को विनिश्चित : **बृज मोहन सूद** बनाम **परषोत्तम सिंह और अन्य** ।	5

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2013 की सी. एम. पी. एम. ओ. सं. 4225.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 227 के अधीन सिविल प्रकीर्ण रिट याचिका ।

याची की ओर से श्री रमाकान्त शर्मा

प्रत्यर्थी की ओर से श्री सुरिन्द्र सकलानी

न्यायमूर्ति त्रिलोक सिंह चौहान – याची द्वारा भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन फाइल वर्तमान याचिका सिविल वाद सं. 153/206 में सी. एम. ए. सं. 263/2013 में विद्वान् सिविल न्यायाधीश (ज्येष्ठ खंड), नादौन, जिला हमीरपुर द्वारा तारीख 19 अक्तूबर, 2013 को पारित उस आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा स्थानीय आयुक्त के रूप

में राजस्व विशेषज्ञ की नियुक्ति के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 26, नियम 9 के अधीन याची द्वारा फाइल किया गया आवेदन खारिज किया गया है । याची ने तारीख 19 अक्तूबर के आक्षेपित आदेश को अभिखण्डित करने और अपास्त करने और सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 151 के साथ पठित आदेश 26, नियम 9 के अधीन आवेदन को मंजूर करने का अनुरोध किया है ।

2. याची ने यह अभिकथित किया है कि उसने इस आधार पर स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए एक आवेदन फाइल किया था कि उसने सूचना का अधिकार अधिनियम के अधीन सूचना प्राप्त की थी जिसमें यह प्रकट किया गया है कि प्रत्यर्थी (प्रतिवादी) के विभिन्न खसरा संख्याओं में चार मुर्गी पालन थे किन्तु राजस्व अभिलेख में इनकी कोई प्रविष्टि नहीं थी । यह जानने के उद्देश्य से कि प्रत्यर्थी के किन खसरा संख्याओं में मुर्गी पालन स्थित थे, यह दावा किया गया था कि राजस्व विशेषज्ञ के रूप में स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति यह निष्कर्ष निकालने के उद्देश्य से आवश्यक थी कि किन खसरा संख्याओं में मुर्गी पालन स्थित हैं ।

3. प्रत्यर्थी ने आवेदन की ग्राह्यता के संबंध में प्रारंभिक आपत्ति उठाकर आवेदन का विरोध किया है । गुण-दोष के आधार पर यह दलील दी गई है कि वादी ने पहले ही तारीख 22 मार्च, 2011 को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 26, नियम 9 के अधीन आवेदन फाइल किया था और स्थानीय आयुक्त के रूप में राजस्व विशेषज्ञ को नियुक्त किया गया था जिसने वाद भूमि को सीमांकित किया था और विस्तृत रिपोर्ट दी थी । अब याची न्यायालय को गुमराह करने के लिए एक नई झूठी कहानी लेकर आया है । यह भी दलील दी गई है कि स्थानीय आयुक्त की रिपोर्ट पहले से ही अभिलेख पर थी और वर्तमान आवेदन न्यायालय को गुमराह करने के लिए फाइल किया गया है ।

4. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले के अभिलेख का परिशीलन किया । यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि याची का वाद इस आशय का है कि प्रत्यर्थी का मुर्गी पालन खसरा सं. 783 के ऊपर स्थित है जिससे उपताप हो रहा है । याची के पक्षकथन में यह कहीं नहीं है कि विभिन्न खसरा संख्याओं के ऊपर स्थित प्रत्यर्थी के चार मुर्गी पालनों से उपताप कारित हो रहा है । अतः मैं यह समझने में असमर्थ हूं कि मामले में और स्थानीय आयुक्त की नियुक्ति के लिए यह आवेदन कैसे और किस रीति में फाइल किया गया है जो वाद में विवाद्यक

ही नहीं है । जब एक बार विचारण न्यायालय द्वारा स्थानीय आयुक्त को पहले ही नियुक्त किया जा चुका था, तब मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि स्थानीय आयुक्त को दूसरी बार क्यों नियुक्त किया जाना चाहिए । वस्तुतः पक्षकारों द्वारा साक्ष्य पहले ही पेश किया जा चुका है और उस समय मामला दलीलों के प्रक्रम पर था जब यह आवेदन फाइल किया गया था । यह स्पष्ट रूप से दर्शित होता है कि आवेदन सद्भाविक नहीं था और वाद के निर्णय को विलंबित करने के प्रयोजन से फाइल किया गया था ।

5. यह सुस्थापित विधि है कि स्थानीय अन्वेषण के लिए आयुक्त की नियुक्ति न्यायालय के विवेक की विषयवस्तु है । **बृज मोहन सूद** बनाम **परषोत्तम सिंह और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया है :–

> "मैंने आवेदन पर विचार किया और इसलिए इसको विनिश्चित कर रहा हूं । यह सुस्थापित विधि है कि स्थानीय अन्वेषण के लिए आयुक्त की नियुक्ति न्यायालय का विवेकाधिकार है और कोई पक्षकार ऐसे अनुतोष के लिए अधिकार के रूप में दावा नहीं कर सकता और न ही न्यायालय आयुक्त की नियुक्ति के लिए बाध्य है । न्यायालय आयुक्त की नियुक्ति के अनुरोध पर विचार करते हुए, मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने और अनुतोष को मंजूर करने या इनकार करने के लिए बाध्य है । आयुक्त की नियुक्ति के लिए पर्याप्त आधार और न्यायौचित्य होना चाहिए और आवश्यकता होनी चाहिए । यह सुस्थापित विधि है कि न्यायालय का किसी बाहरी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए पक्षकार के लिए साक्ष्य संग्रह करने के लिए एक साधन के रूप में उपयोग नहीं हो सकता ।"

6. विधि की सुस्थापित स्थिति को ध्यान में रखते हुए, मुझे विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा पारित आदेश में कोई त्रुटि प्रतीत नहीं होती है । तद्नुसार, वर्तमान याचिका सभी लंबित आवेदनों, यदि कोई हों, के साथ खारिज की जाती है । पक्षकार अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

मही.

---

[1] 2001 की आर. एस. ए. सं. 461, तारीख 24 मार्च, 2014 को विनिश्चित ।

लश्करी राम

बनाम

बक्शी राम

तारीख 18 अक्तूबर, 2013

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क] – द्वितीय अपील – संविदा का निष्पादन – भागिक पालन – प्रत्यर्थी की ओर से संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं होना – संविदा के अग्रसरण में संविदा की विषयवस्तु का कब्जा भी नहीं प्राप्त करना – संविदा का निष्पादन कराने का हकदार नहीं होना – यदि यह साबित कर दिया जाता है कि प्रत्यर्थी ने संविदा के अग्रसरण में संविदा की विषयवस्तु विवादित भूमि का कब्जा नहीं लिया है तथा न ही संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था तो वह संविदा का निष्पादन कराने का हकदार नहीं होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी ने खसरा सं. 168 माप 10 मारला, टीक्का दादू, तप्पा मेवा में समाविष्ट भूमि के बारे में कब्जे के लिए वैकल्पिक रूप में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था इस अभिवाक् पर कि वह वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है, प्रत्यर्थी वाद भूमि में पर-व्यक्ति है और इसलिए उसका वाद भूमि पर कोई अधिकार, हक और हित नहीं है । कानूनगो द्वारा तारीख 20 नवम्बर 1993 को किए गए सीमांकन में प्रत्यर्थी का गृह खसरा सं. 167 से सटे हुए पाया गया था । प्रत्यर्थी ने वाद भूमि अच्छे भाग पर कब्जा करने के लिए सामग्रियां एकत्रित की थीं । उससे वाद भूमि में हस्तक्षेप नहीं करने के लिए निवेदन किया गया किन्तु वह निष्फल हो गया इसलिए, वाद फाइल किया गया । प्रत्यर्थी ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया । उसने विभिन्न प्रारम्भिक आक्षेप जैसे सुने जाने का अधिकार, वाद-हेतुक, विबंधन, मूल्यांकन और वाद कायम रखने के बारे में आक्षेप किया ।

गुणागुणों पर, प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के स्वामित्व और कब्जे से इनकार किया । उसने यह अभिवाक् किया कि वाद भूमि पर उसका तारीख 3 अक्तूबर, 1984 से स्वामित्व और कब्जा है जिसके ऊपर उसने एक गृह का निर्माण कर लिया है । अपीलार्थी कब्जे से बाहर है । प्रत्यर्थी तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार के अधीन वाद भूमि के कब्जे में है । प्रत्यर्थी का गृह वाद भूमि पर है और वाद भूमि का शेष भाग प्रत्यर्थी द्वारा आंगन के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसे तारीख 3 अक्तूबर, 1984 से घेर लिया गया था । अपीलार्थी ने तात्विक तथ्यों को छिपाया है । अपीलार्थी ने तारीख 3 अक्तूबर, 1984 को 9,000/- रुपए प्रतिफल के एवज में गृह के साथ वाद भूमि का विक्रय करने के लिए सहमत हुआ था और करार के निष्पादन के समय पर 7,000/- रुपए प्राप्त कर लिए थे । शेष 2,000/- रुपए विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय पर अपीलार्थी को संदत्त किए जाने थे । अपीलार्थी ने विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया । प्रत्यर्थी करार के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद है । अपीलार्थी ने करार के अनुसार तारीख 3 अक्तूबर, 1984 को गृह और वाद भूमि का कब्जा उसे सौंप दिया था और तभी से प्रत्यर्थी वाद भूमि के कब्जे में है । विचारण न्यायालय ने तारीख 6 दिसम्बर, 2004 को वाद खारिज कर दिया । अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील को भी विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2006 को खारिज कर दिया गया, अतएव, यह द्वितीय अपील फाइल की गई । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – निस्संदेह, लिखित कथन में, प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया है कि वह करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद है किन्तु, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का फायदा लेने के लिए अभिवचनों में मात्र कानूनी उपबंधों को प्रस्तुत करना ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि ऐसे कथन को साबित नहीं किया जाता है । प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में स्वयं को उपस्थित करते हुए यह कथन किया है कि उसने करार के समय पर 7,000/- रुपए संदत्त किए थे और शेष 2,000/- रुपए विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के समय पर संदत्त किए जाने थे । करार प्रदर्श डी-1 में विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए तारीख 3 अक्तूबर, 1984 से एक माह का समय उपबंधित किया गया था, यह भी अनुध्यात

करते हुए कि यदि प्रत्यर्थी विहित अवधि के भीतर विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण करने में असफल रहता है तो उसके द्वारा दी गई अग्रिम धन समपहृत हो जाएगा । प्रत्यर्थी ने अपने लिखित कथन में ऐसा कोई शब्द उल्लिखित नहीं किया है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद रहा है न ही उसने यह कथन किया है कि तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार के पश्चात् कभी भी उसने अपीलार्थी को विक्रय प्रतिफल का शेष रकम दो हजार रुपए देने की प्रस्थापना की थी न ही उसके कथन से यह प्रकट होता है कि वह तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार प्रदर्श डी-1 के आधार पर संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था । इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं है कि करार प्रदर्श डी-1 में उपबंधित एक माह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी ने करार के अनुसार विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए कोई कदम उठाया था । इस बारे में, कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को कोई नोटिस जारी किया था यहां तक कि वाद फाइल करने तक यह उपदर्शित करते हुए कि वह करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था और यह अपीलार्थी ही था जो करार प्रदर्श डी-1 के अनुसार विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण करने में असफल रहा । विचारण न्यायालय ने तारीख 6 दिसम्बर, 2004 के निर्णय के पैराग्राफ 28 में यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्यर्थी अब भी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद है । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 31 अगस्त, 2006 को विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दिए बिना यह विनिर्दिष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किए कि प्रत्यर्थी, करार प्रदर्श डी-1 के अनुसार संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था । दोनों निचले न्यायालयों ने प्रत्यर्थी को संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण देने के लिए साक्षियों का गलत अर्थान्वयन और गलत निर्वचन किया है । करार प्रदर्श डी-1 के अनुसार संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए प्रत्यर्थी की ओर से तैयार और रजामंद होने के बारे में साक्ष्य और सबूत के अभाव में प्रत्यर्थी संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण पाने का हकदार नहीं है । अपीलार्थी ने वैकल्पिक रूप में कब्जे के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक

व्यादेश के लिए वाद फाइल किया है । अपीलार्थी वाद भूमि पर अपना कब्जा साबित करने में असफल रहा है । इसके प्रतिकूल, यह साबित हो गया है कि प्रत्यर्थी वाद भूमि के कब्जे में है । अपीलार्थी का वाद भूमि पर हक साबित हो गया है । प्रत्यर्थी वाद भूमि पर अपने अधिकार, हक और हित साबित करने में असफल रहे हैं । यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि प्रत्यर्थी, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण पाने के हकदार नहीं हैं । (पैरा 17, 18 और 19)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2002]	(2002) 3 एस. सी. सी. 676 : **श्रीमंत शामराव सूर्यवंशी और एक अन्य** बनाम **प्रह्लाद भैरोबा सूर्यवंशी (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य ;**	13
[1997]	1997 (3) शिमला एल. सी. 373 : **नाथू राम** बनाम **श्रीमती कल्लन देवी और अन्य ;**	2
[1997]	ए. आई. आर. 1997 हि. प्र. 12 : **सोहन सिंह और अन्य** बनाम **गुलजारी ;**	16
[1982]	ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 989 : **सरदार गोविन्दराव महदीक और एक अन्य** बनाम **देवी सहाय और अन्य ;**	14, 16
[1981]	1981 शिमला एल. सी. 239 : **सीता राम** बनाम **श्रीमती कांता देवी और अन्य ।**	15

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की नियमित द्वितीय अपील सं. 585.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से — श्री केशव एस. ठाकुर, अधिवक्ता

प्रत्यर्थी की ओर से — सर्वश्री विनोद ठाकुर और विनोद गुप्ता, अधिवक्तागण

न्यायमूर्ति कुलदीप सिंह – अपीलार्थी ने दोनों निचले न्यायालयों में असफल होने के पश्चात् अर्थात् सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ खंड), न्यायालय सं. 1, हमीरपुर द्वारा 1993 की सिविल वाद सं. 311 में पारित तारीख 6 दिसम्बर, 2004 के निर्णय और डिक्री की पुष्टि करते हुए विद्वान् जिला न्यायाधीश, हमीरपुर द्वारा 2005 की सिविल अपील सं. 37 में पारित तारीख 31 अगस्त, 2006 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध यह द्वितीय अपील फाइल की है ।

2. संक्षेप में, तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी ने खसरा सं. 168 माप 10 मारला, टीक्का दादू, तप्पा मेवा में समाविष्ट भूमि (जिसे संक्षेप में "वाद भूमि" कहा गया है) के बारे में कब्जे के लिए वैकल्पिक रूप में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए एक वाद फाइल किया था इस अभिवाक् पर कि वह वाद भूमि का कब्जे सहित स्वामी है, प्रत्यर्थी वाद भूमि में पर-व्यक्ति है और इसलिए उसका वाद भूमि पर कोई अधिकार, हक और हित नहीं है । कानूनगो द्वारा तारीख 20 नवम्बर 1993 को किए गए सीमांकन में प्रत्यर्थी का गृह खसरा सं. 167 से सटे हुए पाया गया था । प्रत्यर्थी ने वाद भूमि अच्छे भाग पर कब्जा करने के लिए सामग्रियां एकत्रित की थीं । उससे वाद भूमि में हस्तक्षेप नहीं करने के लिए निवेदन किया गया किन्तु वह निष्फल हो गया इसलिए, वाद फाइल किया गया ।

3. प्रत्यर्थी ने लिखित कथन फाइल करते हुए वाद का विरोध किया । उसने विभिन्न प्रारम्भिक आक्षेप जैसे सुने जाने का अधिकार, वाद-हेतुक, विबंधन, मूल्यांकन और वाद कायम रखने के बारे में आक्षेप किया । गुणागुणों पर, प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के स्वामित्व और कब्जे से इनकार किया । उसने यह अभिवाक् किया कि वाद भूमि पर उसका तारीख 3 अक्तूबर, 1984 से स्वामित्व और कब्जा है जिसके ऊपर उसने एक गृह का निर्माण कर लिया है । अपीलार्थी कब्जे से बाहर है । प्रत्यर्थी तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार के अधीन वाद भूमि के कब्जे में है । प्रत्यर्थी का गृह वाद भूमि पर है और वाद भूमि का शेष भाग प्रत्यर्थी द्वारा आंगन के रूप में प्रयोग किया जाता है जिसे तारीख 3 अक्तूबर, 1984 से घेर लिया गया था ।

4. अपीलार्थी ने तात्विक तथ्यों को छिपाया है । अपीलार्थी ने तारीख 3 अक्तूबर, 1984 को 9,000/- रुपए प्रतिफल के एवज में गृह के साथ

वाद भूमि का विक्रय करने के लिए सहमत हुआ था और करार के निष्पादन के समय पर 7,000/- रुपए प्राप्त कर लिए थे । शेष 2,000/- रुपए विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय पर अपीलार्थी को संदत्त किए जाने थे । अपीलार्थी ने विक्रय-विलेख निष्पादित नहीं किया । प्रत्यर्थी करार के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद है । अपीलार्थी ने करार के अनुसार तारीख 3 अक्तूबर, 1984 को गृह और वाद भूमि का कब्जा उसे सौंप दिया था और तभी से प्रत्यर्थी वाद भूमि के कब्जे में है ।

5. पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर, विचारण न्यायालय द्वारा निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

(1) क्या वादी स्थायी प्रतिषेधात्मक अनुतोष पाने का हकदार है, जैसी कि प्रार्थना की गई है ?

(2) क्या वादी को सुने जाने का अधिकार और वाद फाइल करने के लिए वाद हेतुक है ?

(3) क्या वादी वाद फाइल करने से स्वयं अपने कार्य और आचरण द्वारा विबंधित है ?

(4) क्या वाद, न्यायालय शुल्क और अधिकारिता के प्रयोजन के लिए समुचित तौर पर मूल्यांकित नहीं है, जैसा कि अभिकथित है ?

(5) क्या वाद वर्तमान प्ररूप में कायम रखे जाने योग्य नहीं है ?

(6) क्या वादी 7,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में तारीख 3 अक्तूबर, 1984 को विवादित संपत्ति का विक्रय करने के लिए प्रतिवादी के साथ एक करार किया था और परिणामस्वरूप प्रतिवादी को विवादित संपत्ति के ऊपर कब्जे में रखा गया जैसा कि लिखित कथन के पैरा सं. 3 और 4 में अभिकथित है, यदि ऐसा है तो इसका प्रभाव ?

(7) अनुतोष ।

विवाद्यक सं. 1 और 4 के नकारात्मक उत्तर दिए गए और विवाद्यक सं. 2, 3, 5 और 6 के सकारात्मक उत्तर दिए गए और विचारण न्यायालय ने तारीख 6 दिसम्बर, 2004 को वाद खारिज कर दिया । अपीलार्थी द्वारा फाइल अपील को भी विद्वान् जिला न्यायाधीश द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2006 को

खारिज कर दिया गया, अतएव, यह द्वितीय अपील फाइल की गई जिसे निम्नलिखित सारवान् विधि के प्रश्न पर स्वीकृत कर लिया गया :–

> "क्या प्रतिवादी-प्रत्यर्थी, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क के अधीन अपने कब्जे का संरक्षण पाने के हकदार हैं और इस बारे में साक्ष्य का गलत परिशीलन किया गया है ?"

6. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का भी परिशीलन किया । अपीलार्थी की ओर से, यह निवेदन किया गया कि दोनों निचले न्यायालयों ने संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का गलत अर्थान्वयन और गलत निर्वचन किया है । निचले न्यायालयों ने साक्ष्य का गलत परिशीलन भी किया है यह गलत तौर पर अभिनिर्धारित किया गया है कि वाद भूमि के कब्जे को तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार के अनुसरण में प्रत्यर्थी को सौंप दिया गया था । यह गलत तौर पर अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रत्यर्थी संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद है । प्रत्यर्थी की ओर से, यह निवेदन किया गया कि दोनों निचले न्यायालयों ने समवर्ती रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि अपीलार्थी ने तारीख 3 अक्तूबर, 1984 को एक विक्रय करार प्रदर्श डी-1 निष्पादित किया था और करार के आधार पर प्रत्यर्थी को वाद भूमि का कब्जा दिया गया था तथा प्रत्यर्थी अब भी संविदा के अपने भाग का अनुपालन करने के लिए तैयार और रजामंद है । यह भी निवेदन किया गया कि अपील में कोई सारवान् विधि का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त नहीं है । साक्ष्यों का द्वितीय अपील में पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है । प्रत्यर्थी ने अपील खारिज किए जाने की प्रार्थना की है ।

7. अपीलार्थी ने वाद पत्र में स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश और वैकल्पिक कब्जे की प्रार्थना की है । लिखित कथन में प्रत्यर्थी ने तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार के आधार पर वाद भूमि पर कब्जे का अभिवाक् किया है । प्रदर्श डी-1, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वाद भूमि के विक्रय के लिए तारीख 3 अक्तूबर, 1984 का करार है ।

8. प्रतिवादी साक्षी-5 वसंत राम, पार्श्व साक्षी ने करार प्रदर्श डी-1 को साबित किया है और यह कथन किया है कि लश्करी ने बक्शी राम को 9,000/- रुपए में वाद भूमि का विक्रय किया था, जिसने उसकी उपस्थिति में 7,000/- रुपए संदत्त कर दिए थे । उसने साक्षी के रूप में प्रदर्श डी-1

पर हस्ताक्षर किए थे जिस पर लश्करी ने भी हस्ताक्षर किए थे । उसने यह कथन किया कि नाथू राम जो करार का एक अन्य पार्श्व साक्षी था, की मृत्यु हो गई है । बक्शी राम, करार के आधार पर उक्त भूमि पर कब्जे में आ गया था ।

9. प्रतिवादी साक्षी-1 बक्शी राम ने यह भी कथन किया कि लश्करी ने करार प्रदर्श डी-1 पर हस्ताक्षर किए थे । वह करार की तारीख तक भूमि और गृह के कब्जे में था उसने वर्ष 1993 में प्रविष्टियों में सुधार के लिए आवेदन किया था । अभि. सा. 1 रतन चन्द पुत्र लश्करी, अपीलार्थी लश्करी राम का मुख्तारनामा है । उसने यह कथन किया कि प्रत्यर्थी का वाद भूमि के ऊपर कोई अधिकार नहीं है । उसने इस बात से इनकार किया कि उसके पिता ने बक्शी को किसी भी गृह का विक्रय किया है । उसने इस बात से भी इनकार किया कि उसके पिता ने नाथू राम और वसंत राम की उपस्थिति में 9,000/- रुपए के प्रतिफल के एवज में भूमि और गृह का विक्रय करने के लिए 7,000/- रुपए प्राप्त करने के पश्चात् एक करार किया था । वाद भूमि खसरा सं. 168 में समाविष्ट है ।

10. प्रतिवादी साक्षी 6 का कथन तारीख 17 फरवरी, 1998 को अभिलिखित हुआ था । वह पंचायत का अध्यक्ष था । उसने उक्त गृह पर पिछले लगभग 14-15 वर्षों से बक्शी राम का कब्जे में रहना देखा है । उसे इस बात की जानकारी हुई थी बक्शी राम ने लश्करी से उक्त गृह क्रय कर लिया था । प्रतिवादी साक्षी-7 महंत राम ने यह कथन किया है कि उसने पिछले लगभग 14-15 वर्षों से विवादित गृह पर बक्शी राम का कब्जा रहते देखा है । प्रतिवादी साक्षी-7 का कथन तारीख 13 मई, 1998 को अभिलिखित हुआ था । प्रतिवादी साक्षी-8 बेली राम, जो वर्ष 1995 में वार्ड पंच था, ने यह कथन किया है कि पिछले लगभग 15 वर्षों से वाद भूमि और गृह पर प्रत्यर्थी का कब्जा है, जिसे उसने अपीलार्थी से क्रय किया था । प्रतिवादी साक्षी-8 का कथन तारीख 20 जून, 1998 को अभिलिखित हुआ था । प्रदर्श पी बी और प्रदर्श डी-4, आबादी को दर्शित करने वाले खसरा सं. 168 के संबंध में वर्ष 1989-90 के लिए जमाबंदी हैं । प्रदर्श डी-5 खसरा सं. 168 के ऊपर आबादी दर्शित करने वाले वर्ष 1984-85 के लिए मिसल हैकियत की प्रति है ।

11. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच वाद भूमि का विक्रय करने हेतु

तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार प्रदर्श डी-1 का निष्पादन साबित कर दिया गया है । यह भी साबित कर दिया गया है कि आबादी में 10 मारला भूमि खसरा सं. 168 में समाविष्ट भूमि पर करार प्रदर्श डी-1 के अनुसरण में प्रत्यर्थी का कब्जा है । पक्षकारों का यह स्वीकृत पक्षकथन है कि करार प्रदर्श डी-1 के आधार पर कोई विक्रय-विलेख प्रत्यर्थी के पक्ष में रजिस्ट्रीकृत नहीं हुआ है । निचले न्यायालय ने संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क को दृष्टि में रखते हुए अपीलार्थी का वाद खारिज कर दिया है । विचार के लिए मुद्‌दा यह है कि क्या प्रत्यर्थी खसरा सं. 168 के ऊपर अपीलार्थी का साबित हक को ध्यान में रखते हुए संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण पाने का हकदार है ।

12. सुसंगत समय पर संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क इस प्रकार था :–

"53क. **भागिक पालन** – जहां कि कोई व्यक्ति किसी स्थावर संपत्ति को प्रतिफलार्थ अन्तरित करने के लिए अपने द्वारा या अपनी ओर से हस्ताक्षरित लेखबद्ध ऐसी संविदा करता है जिससे उस अन्तरण को गठित करने के लिए आवश्यक निबंधन युक्तियुक्त निश्चय के साथ अभिनिश्चित किए जा सकते हैं,

और अन्तरिती ने संविदा के भागिक पालन में उस सम्पत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया है । अन्तरिती, जिसका कब्जा पहले से ही है, संविदा के भागिक पालन में अपना कब्जा चालू रखता है और उस संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य कर चुका है,

और अन्तरिती संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है, या पालन करने के लिए रजामन्द है,

वहां इस बात के होते हुए भी कि जहां कि अन्तरण की कोई लिखत है, वहां पर अन्तरण किसी तत्समय-प्रवृत्त-विधि द्वारा उसके लिए विहित रीति से पूरा नहीं किया गया है, अन्तरक या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाला कोई व्यक्ति अन्तरिती या उससे व्युत्पन्न अधिकार के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध उस सम्पत्ति के विषय में, जिस पर अन्तरिती ने कब्जा ले

> लिया है या चालू रखा है, कोई भी ऐसा अधिकार, जो संविदा के निबन्धनों द्वारा अभिव्यक्त रूप से उपबन्धित अधिकार से भिन्न है, प्रवर्तित कराने से विवर्जित होगा :
>
> परन्तु, इस धारा की कोई भी बात ऐसे संप्रतिफल अन्तरिती के अधिकारों पर प्रभाव नहीं डालेगी जिसे उस संविदा या उसके भागिक पालन की कोई सूचना न हो ।"

13. **श्रीमंत शामराव सूर्यवंशी और एक अन्य** बनाम **प्रह्लाद भैरोबा सूर्यवंशी (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और अन्य**[1] वाले मामले में माननीय उच्चतम न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "किन्तु, कतिपय शर्तें हैं जिन्हें पूरा करना अपेक्षित है यदि अन्तरिती, अधिनियम, 1882 की धारा 53क के अधीन अपने कब्जे की प्रतिरक्षा या संरक्षण करना चाहता है । आवश्यक शर्तें यह हैं कि –
>
> (1) किसी स्थावर संपत्ति को प्रतिफलार्थ अन्तरित करने की संविदा होनी चाहिए,
>
> (2) संविदा लेखबद्ध होनी चाहिए, जिस पर अन्तरक द्वारा या उसकी ओर से किसी अन्य द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए,
>
> (3) ऐसे शब्दों में लेखबद्ध होना चाहिए जिससे अन्तरण को गठित करने के लिए आवश्यक निबंधनों को सुनिश्चित किया जा सके,
>
> (4) अन्तरिती द्वारा संविदा के भागिक पालन में संपत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया जाना चाहिए,
>
> (5) अन्तरिती द्वारा संविदा को अग्रसर करने के लिए कोई कार्य कर लिया जाना चाहिए, और
>
> (6) अन्तरिती द्वारा संविदा के अपने भाग का पालन कर लिया जाना चाहिए या पालन करने के लिए रजामंद होना चाहिए ।"

---

[1] (2002) 3 एस. सी. सी. 676.

14. **सरदार गोविन्दराव महदीक और एक अन्य** बनाम **देवी सहाय और अन्य**[1] वाले मामले में दिए गए निर्णय के पैरा 41 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "धारा 53क में यह अपेक्षित है कि भागिक पालन के फायदे का दावा करने वाले व्यक्ति को हमेशा ही संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद दर्शित होना चाहिए । और यदि यह दर्शित होता है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं है तो वह भागिक पालन के सिद्धांत का संरक्षण पाने के लिए अर्ह नहीं होगा......... । लिखित कथन में इस प्रकार का कोई कथन नहीं है अपितु, विचारण के समय अपने साक्ष्य में भी वह यह दर्शित करने में समर्थ नहीं रहा है कि उसने किसी लेनदार को संदत्त किया है या लेनदारों में से किसी को भी संदत्त करने का प्रयास किया है......... । इन सभी से निश्चायक रूप से यह दर्शित होता है कि बंधककर्ता स्वयं ही संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए रजामंद नहीं हैं .... ।"

15. **सीता राम** बनाम **श्रीमती कांता देवी और अन्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क में यथा प्रतिपादित भागिक पालन के सिद्धांत का संरक्षण पाने की ईप्सा करने वाले व्यक्ति को अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिवाचित और साबित करना चाहिए कि उसने संविदा के भागिक पालन में संपत्ति या उसके किसी भाग का कब्जा ले लिया है और यदि उसने पहले ही कब्जा ले लिया था तो वह संविदा के भागिक पालन में ऐसे कब्जे में निरन्तर बना हुआ है और उसने संविदा को अग्रसर करने में कोई कार्य कर लिया है । इसके अतिरिक्त, उसने यह भी अभिकथित और साबित कर दिया है कि उसने संविदा के अपने भाग का पालन कर लिया है या पालन करने के लिए रजामंद है ....।"

---

[1] ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 989.

[2] 1981 शिमला एल. सी. 239.

16. **सोहन सिंह और अन्य** बनाम **गुलजारी**[1] वाले मामले में, पुनः निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "भागिक पालन के सिद्धांत का अवलंब लेने के लिए अन्तरिती द्वारा पूरी की जाने वाली प्रमुख शर्तों में से एक शर्त यह है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन कर चुका है या पालन करने के लिए रजामंद है । संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53-क में यह अपेक्षित है कि भागिक पालन के फायदे का दावा करने वाले व्यक्ति को हमेशा ही संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद दर्शित होना चाहिए और यदि यह दर्शित होता है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद नहीं है तो वह भागिक पालन के सिद्धांत के लिए अर्ह नहीं होगा (देखें कुलदीप सिंह सावने **बनाम** श्रीमती प्रकाश चन्द (ए. आई. आर. 1985 पंजाब-हरियाणा 222) तथा सरदार गोविन्दराव महदीक और एक अन्य **बनाम** देवी सहाय और अन्य (ए. आई. आर. 1982 एस. सी. 989) ।"

17. निस्संदेह, लिखित कथन में, प्रत्यर्थी ने यह अभिवाक् किया है कि वह करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद है किन्तु, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का फायदा लेने के लिए अभिवचनों में मात्र कानूनी उपबंधों को प्रस्तुत करना ही पर्याप्त नहीं है जब तक कि ऐसे कथन को साबित नहीं किया जाता है । प्रत्यर्थी ने प्रतिवादी साक्षी 1 के रूप में स्वयं को उपस्थित करते हुए यह कथन किया है कि उसने करार के समय पर 7,000/- रुपए संदत्त किए थे और शेष 2,000/- रुपए विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के समय पर संदत्त किए जाने थे । करार प्रदर्श डी-1 में विक्रय-विलेख के निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए तारीख 3 अक्तूबर, 1984 से एक माह का समय उपबंधित किया गया था, यह भी अनुध्यात करते हुए कि यदि प्रत्यर्थी विहित अवधि के भीतर विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण करने में असफल रहता है तो उसके द्वारा दिया गया अग्रिम धन समपहृत हो जाएगा । प्रत्यर्थी ने अपने लिखित कथन में ऐसा कोई शब्द उल्लिखित नहीं

---

[1] ए. आई. आर. 1997 हिमाचल प्रदेश 12.

किया है कि वह संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद रहा है न ही उसने यह कथन किया है कि तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार के पश्चात् कभी भी उसने अपीलार्थी को विक्रय प्रतिफल का शेष रकम 2,000/- रुपए देने की प्रस्थापना की थी न ही उसके कथन से यह प्रकट होता है कि वह तारीख 3 अक्तूबर, 1984 के करार प्रदर्श डी-1 के आधार पर संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था । इस बारे में कोई साक्ष्य नहीं है कि करार प्रदर्श डी-1 में उपबंधित एक माह की अवधि के भीतर प्रत्यर्थी ने करार के अनुसार विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण के लिए कोई कदम उठाया था । इस बारे में, कोई साक्ष्य नहीं है कि प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी को कोई नोटिस जारी किया था यहां तक कि वाद फाइल करने तक यह उपदर्शित करते हुए कि वह करार के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था और यह अपीलार्थी ही था जो करार प्रदर्श डी-1 के अनुसार विक्रय-विलेख का निष्पादन और रजिस्ट्रीकरण करने में असफल रहा ।

18. विचारण न्यायालय ने तारीख 6 दिसम्बर, 2004 के निर्णय के पैरा 28 में यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्यर्थी अब भी संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद है । प्रथम अपील न्यायालय ने तारीख 31 अगस्त, 2006 को विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री की पुष्टि कर दिए बिना यह विनिर्दिष्ट निष्कर्ष अभिलिखित किया कि प्रत्यर्थी, करार प्रदर्श डी-1 के अनुसार संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए तैयार और रजामंद था । दोनों निचले न्यायालयों ने प्रत्यर्थी को संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण देने के लिए साक्षियों का गलत अर्थान्वयन और गलत निर्वचन किया है । करार प्रदर्श डी-1 के अनुसार संविदा के अपने भाग का पालन करने के लिए प्रत्यर्थी की ओर से तैयार और रजामंद होने के बारे में साक्ष्य और सबूत के अभाव में प्रत्यर्थी संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण पाने का हकदार नहीं है ।

19. अपीलार्थी ने वैकल्पिक रूप में कब्जे के लिए स्थायी प्रतिषेधात्मक व्यादेश के लिए वाद फाइल किया है । अपीलार्थी वाद भूमि पर अपना कब्जा साबित करने में असफल रहा है । इसके प्रतिकूल, यह साबित हो गया है कि प्रत्यर्थी वाद भूमि के कब्जे में है । अपीलार्थी का वाद

भूमि पर हक साबित हो गया है । प्रत्यर्थी वाद भूमि पर अपने अधिकार, हक और हित साबित करने में असफल रहे हैं । यह पहले ही अभिनिर्धारित किया जा चुका है कि प्रत्यर्थी, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 की धारा 53क का संरक्षण पाने के हकदार नहीं हैं ।

20. **नाथू राम** बनाम **श्रीमती कल्लन देवी और अन्य**[1] वाले मामले में इसमें के अपीलार्थी ने घोषणा और व्यादेश के लिए तथा वैकल्पिक रूप में कब्जे के लिए वाद फाइल किया था । विचारण न्यायालय ने वाद डिक्री कर दिया था । विद्वान् निचले अपील न्यायालय ने मंगत राम प्रतिवादी साक्षी 1 का कतिपय खसरा संख्याओं का अप्राधिकृत अधिभोग अभिनिर्धारित किया था और इसलिए, एक सीमा तक विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया गया था और अपील भागतः मंजूर कर ली थी । उच्च न्यायालय ने वाद भूमि पर इसमें के अपीलार्थी और प्रतिवादी सं. 2 का हक अभिनिर्धारित किया, प्रतिवादी सं. 1 की अभिधृति सिद्ध नहीं हुई थी । उच्च न्यायालय ने निचले अपील न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त कर दिया और विचारण न्यायालय के निर्णय और डिक्री को प्रत्यावर्तित कर दिया इस उपांतरण के साथ कि इसमें के अपीलार्थी और प्रतिवादी सं. 2 रिपोर्ट में सविस्तार वर्णित भूमि के स्वामी अभिनिर्धारित किए जाते हैं और कब्जा प्रदान करने की तारीख तक अंतःकालीन लाभ के साथ अपीलार्थी और प्रतिवादी सं. 2 के पक्ष में कब्जे की डिक्री पारित की जाती है । वर्तमान मामले में भी अपीलार्थी हक के आधार पर कब्जे की डिक्री द्वारा वैकल्पिक अनुतोष पाने का हकदार है । उपर्युक्त उल्लिखित विधि का सारवान् प्रश्न अपीलार्थी के पक्ष में प्रत्यर्थी के विरुद्ध विनिश्चित किए जाते हैं ।

21. उपर्युक्त को ध्यान में रखते हुए अपील मंजूर की जाती है । निचले दोनों न्यायालयों द्वारा पारित निर्णय और डिक्री अपास्त किए जाते हैं तथा वाद भूमि के कब्जे के लिए अपीलार्थी-वादी के वाद डिक्री किए जाते हैं, खर्चे का कोई आदेश नहीं दिया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

क.

---

[1] 1997 (3) शिमला एल. सी. 373.

सुपरिन्टेंडिंग इंजीनियर और अन्य

बनाम

तिलक राज

तारीख़ 16 मई, 2014

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – विपक्षी पक्षकार द्वारा प्रथम इत्तिला रिपोर्ट आदि को विवादित न करना – विपक्षी द्वारा यह अभिवाक् करना कि उन्होंने न्यायालय से बाहर समझौता करने का प्रयास किया था – यह माना जाएगा कि विपक्षी ने घटना होना स्वीकार किया है – अतः निचले अधिकरण के अधिनिर्णय में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

इस अपील में तिलक राज बनाम कार्यकारी इंजीनियर और एक अन्य के शीर्षक से याचिका सं. 41/2006 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण चम्बा, डिविजन चम्बा (हिमाचल प्रदेश) द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 2008 को दिए गए उस अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा दावेदार-प्रत्यर्थी के पक्ष में और प्रत्यर्थियों-अपीलार्थियों के विरुद्ध 1,93,000/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है । साथ ही साथ दावा याचिका से फाइल करने की तारीख से अर्थात् 7 दिसम्बर, 2006, इसकी वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी अधिनिर्णीत किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – दावेदार-प्रत्यर्थी द्वारा कराई गई साक्षियों की परीक्षा से यह साबित हो गया है कि मृतक सुरिन्दर कुमार उक्त यान में यात्रा कर रहा था; चालक सुरिन्दर सिंह और मृतक सुरिन्दर कुमार चाय पीने के लिए बग्गा में चाय की दुकान पर रुके थे; वे पुनः उक्त यान में बैठ गए थे ; यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया ; यान रावी नदी में गिरा था और चालक सुरिन्दर सिंह का शव मिला था, जबकि मृतक सुरिन्दर कुमार का शव घटना के 12-13 दिन बाद मिला था । सभी साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य किया है कि दुर्घटना चालक सुरिन्दर सिंह के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने से घटी थी । ये सभी तथ्य प्रथम इत्तिला सूचना में अभिलिखित हैं,

जिनका प्रत्यर्थियों-अपीलार्थियों द्वारा खण्डन नहीं किया गया है और इस प्रकार यह न केवल साबित हो गई है, अपितु स्वीकार की गई है । प्रत्यर्थियों के साक्षियों में से एक अर्थात् आर. डब्ल्यू.-2 हर्ष पुरी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उन्होंने मृतक के दावेदार-भाई के साथ विवाद का न्यायालय के बाहर समाधान कर लिया है जिसका यह अर्थ हुआ कि उन्होंने दुर्घटना को स्वीकार किया है और मृतक सुरिन्दर कुमार की मृत्यु उसी दुर्घटना में हुई थी । अधिकरण ने अभिलेख पर पेश किए गए अभिवाकों और साक्ष्य को पढ़ने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार ने यह साबित कर दिया है कि घटना चालक सुरिन्दर सिंह द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसमें दावेदार के भाई मृतक सुरिन्दर कुमार ने अपना जीवन गवां दिया था । अधिकरण ने सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार ने अपना उपार्जक खोया है और उसे दावा याचिका को फाइल करने की तारीख से उसकी वसूली तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 1,93,000/- रुपए की धनराशि का हकदार अवधारित किया । न तो प्रत्यर्थी-अपीलार्थियों ने और न ही दावेदार-प्रत्यर्थी ने आक्षेपित अधिनिर्णय में प्रतिकर की अपर्याप्तता के आधार को प्रश्नगत किया है । चालक सुरिन्दर सिंह राज्य सरकार-अपीलार्थी के नियोजन में था और इसलिए इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए, अधिकरण ने इस विवाद्यक का दावेदार के पक्ष में और अपीलार्थियों-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध ठीक ही विनिश्चय किया है और उन पर ठीक ही दायित्व डाला है । विद्वान् सहायक महाधिवक्ता ने विवाद्यक सं. 3 के संबंध में कोई दलील नहीं दी है । इसलिए, इस विवाद्यक पर अधिकरण द्वारा दिए गए निष्कर्षों को कायम रखा जाता है । जहां तक विवाद्यक सं. 4 का संबंध है, अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 पर निष्कर्ष दिए गए हैं और अधिकरण द्वारा प्रत्यर्थियों-अपीलार्थियों के विरुद्ध ठीक ही दिया गया है । तद्नुसार, इस विवाद्यक पर अधिकरण द्वारा दिए गए निष्कर्ष भी कायम रखे जाते हैं । (पैरा 5, 6, 7, 8, 9, 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2008 की एफ. ए. ओ. सं. 346.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री वी. एस. चौहान और रमेश ठाकुर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री पुश्पेन्द्र कुमार और के. बी. खजूरिया

न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – इस अपील में तिलक राज बनाम कार्यकारी इंजीनियर और एक अन्य के शीर्षक से याचिका सं. 41/2006 में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण चम्बा, डिविजन चम्बा (हिमाचल प्रदेश) (जिसे इसमें इसके पश्चात् "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा तारीख 1 अप्रैल, 2008 को दिए गए उस अधिनिर्णय को चुनौती दी गई है जिसके द्वारा दावेदार-प्रत्यर्थी के पक्ष में और प्रत्यर्थियों-अपीलार्थियों के विरुद्ध 1,93,000/- रुपए का प्रतिकर अधिनिर्णीत किया गया है । साथ ही साथ दावा याचिका से फाइल करने की तारीख से अर्थात् 7 दिसम्बर, 2006 इसकी वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक की दर से ब्याज भी अधिनिर्णीत किया गया है ।

संक्षिप्त तथ्य :

2. दावेदार एक यानीय दुर्घटना से पीड़ित है, जो घटना हिमाचल प्रदेश लोक निर्माण विभाग में नियोजित चालक सुरेन्द्र सिंह से उस समय हुई थी जब वह यान जिसका रजिस्ट्रेशन सं. एच पी 46-0153 है, को तारीख 1 सितम्बर, 2006 को लगभग 3.10 बजे उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक बग्गा, तहसील और जिला चम्बा में चला रहा था जिसमें चालक सुरिन्दर सिंह और दावेदार के भाई अर्थात् सुरिन्दर कुमार की मृत्यु हो गई थी । प्रथम इत्तिला सूचना दर्ज कराई गई थी । दावेदार ने दावा याचिका फाइल की थी और दावा याचिका में दिए गए आधारों पर 7,00,000/- रुपए की धनराशि के प्रतिकर की मांग की गई है ।

3. प्रत्यर्थियों द्वारा दावा याचिका का विरोध किया गया था और मामला लड़ा गया था । अधिकरण द्वारा तारीख 15 जून, 2007 को निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए :–

> "1. क्या बग्गा, तहसील और जिला चम्बा में तारीख 1 सितम्बर, 2006 को लगभग 3.10 बजे याची के भाई श्री सुरिन्दर कुमार की यान सं. एच पी 46-0153 के चालक सुरिन्दर सिंह के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने के टक्कर से मृत्यु हो गई थी जो स्वयं भी इस दुर्घटना में मर गया था जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. पी.

2. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप में साबित होता है तो याची प्रतिकर की कितनी धनराशि का हकदार है और किससे ? ओ. पी. पी.

3. क्या याचिका चलने योग्य नहीं है जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. आर.

4. क्या मृतक दुर्घटना करने वाले यान में यात्रा नहीं कर रहा था और न ही इस यान की दुर्घटना में उसकी मृत्यु हुई थी जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. आर.

5. अनुतोष ।"

4. दावेदार-प्रत्यर्थी ने अपने पक्षकथन के समर्थन में चार साक्षियों की परीक्षा कराई और वह स्वयं भी साक्षी कठघरे में उपस्थित हुआ । प्रत्यर्थी-अपीलार्थियों ने अपने पक्षकथन के समर्थन में दो साक्षियों अर्थात् कार्यपालक इंजीनियर रविन्दर कुमार मिनहास और सहायक इंजीनियर हर्ष पुरी की परीक्षा कराई ।

5. दावेदार-प्रत्यर्थी द्वारा कराई गई साक्षियों की परीक्षा से यह साबित हो गया है कि मृतक सुरिन्दर कुमार उक्त यान में यात्रा कर रहा था; चालक सुरिन्दर सिंह और मृतक सुरिन्दर कुमार चाय पीने के लिए बग्गा में चाय की दुकान पर रुके थे; वे पुनः उक्त यान में बैठ गए थे ; यान दुर्घटनाग्रस्त हो गया ; यान रावी नदी में गिरा था और चालक सुरिन्दर सिंह का शव मिला था, जबकि मृतक सुरिन्दर कुमार का शव घटना के 12-13 दिन बाद मिला था । सभी साक्षियों ने यह अभिसाक्ष्य किया है कि दुर्घटना चालक सुरिन्दर सिंह के उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक यान चलाने से घटी थी । ये सभी तथ्य प्रथम इत्तिला सूचना में अभिलिखित हैं, जिनका प्रत्यर्थियों-अपीलार्थियों द्वारा खण्डन नहीं किया गया है और इस प्रकार यह न केवल साबित हो गई है, अपितु स्वीकार की गई है ।

6. प्रत्यर्थियों के साक्षियों में से एक अर्थात् आर. डब्ल्यू.-2 हर्ष पुरी ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि उन्होंने मृतक के दावेदार-भाई के साथ विवाद का न्यायालय के बाहर समाधान कर लिया है जिसका यह अर्थ हुआ कि उन्होंने दुर्घटना को स्वीकार किया है और मृतक सुरिन्दर कुमार की मृत्यु उसी दुर्घटना में हुई थी ।

7. अधिकरण ने अभिलेख पर पेश किए गए अभिवाकों और साक्ष्य को

पढ़ने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार ने यह साबित कर दिया है कि घटना चालक सुरिन्दर सिंह द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसमें दावेदार के भाई मृतक सुरिन्दर कुमार ने अपना जीवन गवां दिया था । अधिकरण ने सभी पहलुओं पर विचार करने के बाद यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार ने अपना उपार्जक खोया है और उसे दावा याचिका को फाइल करने की तारीख से उसकी वसूली तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर से 1,93,000/- रुपए की धनराशि का हकदार अवधारित किया ।

8. न तो प्रत्यर्थी-अपीलार्थियों ने और न ही दावेदार-प्रत्यर्थी ने आक्षेपित अधिनिर्णय में प्रतिकर की अपर्याप्तता के आधार को प्रश्नगत किया है ।

9. चालक सुरिन्दर सिंह राज्य सरकार-अपीलार्थी के नियोजन में था और इसलिए इस तथ्य को दृष्टिगत करते हुए, अधिकरण ने इस विवाद्यक का दावेदार के पक्ष में और अपीलार्थियों-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध ठीक ही विनिश्चय किया है और उन पर ठीक ही दायित्व डाला है ।

10. विद्वान् सहायक महाधिवक्ता ने विवाद्यक सं. 3 के संबंध में कोई दलील नहीं दी है । इसलिए, इस विवाद्यक पर अधिकरण द्वारा दिए गए निष्कर्षों को कायम रखा जाता है ।

11. जहां तक विवाद्यक सं. 4 का संबंध है, अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 1 पर निष्कर्ष दिए गए हैं और अधिकरण द्वारा प्रत्यर्थियों-अपीलार्थियों के विरुद्ध ठीक ही दिया गया है । तद्नुसार, इस विवाद्यक पर अधिकरण द्वारा दिए गए निष्कर्ष भी कायम रखे जाते हैं ।

12. उपर्युक्त को देखते हुए, अपील गुण-दोष के आधार पर खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार इसे खारिज किया जाता है और आक्षेपित अधिनिर्णय कायम रखा जाता है ।

13. रजिस्ट्री को यह निदेश दिया जाता है कि वह अधिनिर्णीत धनराशि जारी आदाता खाता चैक द्वारा दावेदार के पक्ष में आक्षेपित निर्णय में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों के अनुसार निर्मुक्त करे ।

14. अभिलेख पर निर्णय की प्रति रखने के बाद अभिलेख वापस भेजा जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही.

नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

श्रीमती शशि बाला और अन्य

तारीख़ 4 जुलाई, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमाकृत को पक्षकार न बनाया जाना – मृतक के माता-पिता, पत्नी और पुत्रों द्वारा प्रतिकर के लिए दावेदारी – अधिनियम का उद्देश्य यानी दुर्घटनाओं में आहतों तथा नुकसान पहुंचने वाले व्यक्तियों की शीघ्रातिशीघ्र सहायता करना है – अतः, प्रक्रियात्मक कमियों और तकनीकी खामियों को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए ।

इस अपील में 2008 के मोटर दुर्घटना दावा आवेदन सं. 23 जो शशि बाला और अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के नाम से है, ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, हमीरपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा तारीख 1 जनवरी, 2009 को पारित उस अधिनिर्णय को आक्षेपित किया गया है जिसके अधीन दावेदारों के हक में और बीमाकर्ता अपीलार्थी, बीमा कंपनी के विरुद्ध 7.5% वार्षिक ब्याज की दर सहित 4,05,500/- रुपए की धनराशि के प्रतिकर के लिए अधिनिर्णय किया गया है । अधिनिर्णय को अपील के ज्ञापन में उल्लिखित आधारों पर आक्षेपित किया गया है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – मृतक की पत्नी न केवल दावेदार है अपितु मृतक के माता-पिता और पुत्र भी दावेदार हैं और वे इस कारण से यानीय दुर्घटना के आहत होने के कारण प्रतिकर के लिए हकदार हैं कि उन्होंने आश्रितता का स्रोत खो दिया है । पत्नी ने न केवल निर्भरता का स्रोत खो दिया है अपितु उसका वैवाहिक गृह (ससुराल) भी समाप्त हो गई है । वह एक विधवा के रूप में रह रही है और कठिनाइयों का सामना कर रही है और वह इन कठिनाइयों का सामना अपनी मृत्यु होने तक पूरे जीवन काल में करेगी । न्यायालय विधिक कमी को दूर करने के लिए मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1, नियम 10 और

आदेश 41 के निबंधनों में दावेदार सं. 1 अर्थात् शशि बाला को पक्षान्तरित करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करना उचित समझता हूं क्योंकि वह अपील में प्रत्यर्थी है तथा दावा आवेदन में पक्षकार है । उसे अपील में बीमाकृत के रूप में प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में और दावा आवेदन में पक्षकार बनाया गया है । कार्यालय को आदेश दिया जाता है कि वह आवश्यक सुधार करे । स्वीकृततः दुर्घटना यान के प्रयोग के कारण हुई है । यान बीमाकृत था और इसलिए बीमाकर्ता प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है । यह देश की स्पष्ट विधि है और बार-बार दोहराया गया है कि प्रतिकर प्रदान करना यानीय दुर्घटनाओं के आहतों तथा नुकसान पहुंचने वाले व्यक्तियों की शीघ्रातिशीघ्र सहायता करने के लिए प्रतिपूर्ति करने के लिए है जो असहाय हो गए हैं और उन्हें सामाजिक बुराई से बचाना आवश्यक है । इस बारे में प्रक्रियात्मक कमियों या अन्य तकनीकी खामियों की कोई भूमिका नहीं है । अपील के लंबन के दौरान माता-पिता की मृत्यु हो गई है और दावेदार सं. 1 अर्थात् पत्नी ने प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में स्थान ले लिया है । अतः पुत्र-दावेदार अधिनिर्णीत धनराशि को समान अंशों में पाने के हकदार हैं । इस धनराशि का 50 प्रतिशत पुत्रों अर्थात् चंदन वर्मा और अनमोल वर्मा के नामों में सावधि जमा के रूप में 5 वर्ष की अवधि के लिए अनुसूचित बैंक में जमा किया जाएगा और शेष 50 प्रतिशत धनराशि के बारे में यह आदेश दिया जाता है कि कार्यालय द्वारा समुचित पहचान करने के पश्चात् अदाता चैक द्वारा खाते में चंदन वर्मा और अनमोल वर्मा के हक में धनराशि निर्मुक्त की जाए । (पैरा 9, 10, 11, 14 और 15)

सिविल (अपीली) अधिकारिता : 2009 की एफ. ए. ओ. सं. 258.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री दीपक भसीन

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री नील कमल शर्मा

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – इस अपील में 2008 के मोटर दुर्घटना दावा आवेदन सं. 23 जो शशि बाला और अन्य बनाम नेशनल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड के नाम से है, ने मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, हमीरपुर, उत्तर प्रदेश द्वारा तारीख 1 जनवरी, 2009 को पारित उस अधिनिर्णय को आक्षेपित किया गया है जिसके अधीन दावेदारों के हक में और बीमाकर्ता अपीलार्थी, बीमा कंपनी के विरुद्ध 7.5% वार्षिक ब्याज की दर सहित 4,05,500/- रुपए की धनराशि के प्रतिकर के लिए

अधिनिर्णय किया गया है । अधिनिर्णय को अपील के ज्ञापन में उल्लिखित आधारों पर आक्षेपित किया गया है ।

2. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल द्वारा दी गई मुख्य दलील यह है कि दुर्घटना करने वाले यान अर्थात् स्कूटर सं. एच पी 22 ए 4207 की स्वामी शशि बाला अर्थात् दावेदार सं. 1 है । अतः दावा आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है ।

3. शशि बाला-दावेदार सं. 1 मृतक राकेश कुमार की पत्नी थी । राकेश कुमार की तारीख 29 दिसंबर, 2007 को लगभग 3.45 बजे अपराह्न राष्ट्रीय राजमार्ग पर उक्त स्कूटर को हालेड, निकट बरौली, तहसील देहरा, जिला कांगड़ा में चलाते समय दुर्घटना में मृत्यु हो गई । जब वह सड़क को पार कर रहा था तो स्कूटर की टक्कर हो गई और सड़क पर फिसल गया । मृतक स्कूटर से गिर गया और उसे क्षतियां पहुंचीं और बाद में क्षतियों के कारण उसकी मृत्यु हो गई ।

4. मृतक राकेश कुमार की विधवा और उसके पुत्रों अर्थात् चन्दन वर्मा और अनमोल वर्मा, उसके माता-पिता अर्थात् धनी राम और सत्य देवी ने निचले अधिकरण के समक्ष प्रतिकर की मांग करते हुए दावा आवेदन फाइल किया था ।

5. बीमाकर्ता-अपीलार्थी ने उत्तर फाइल किया था ।

6. अधिकरण ने निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"1. क्या आवेदक-दावेदार मोटर यान अधिनियम, 1988 के अधीन प्रतिकर के लिए हकदार हैं जैसाकि अभिलिखित किया गया है, यदि हां है, तो कितनी धनराशि के लिए ? ओ. पी. पी.

2. क्या आवेदन ग्रहण किए जाने योग्य है ? ओ. पी. पी. आर.

3. क्या दावेदार वर्तमान आवेदन फाइल करने से विबद्ध हैं जैसाकि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. आर.

4. क्या मृतक के पास सुसंगत समय पर स्कूटर चलाने के लिए विधिमान्य और प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी, यदि हां तो इसका प्रभाव ? ओ. पी. आर.

5. क्या आवेदन आवश्यक पक्षकारों के असंयोजन और कुसंयोजन के कारण स्वीकार किए जाने योग्य नहीं है ? ओ. पी. आर.

6. अनुतोष ।"

7. पक्षकारों ने साक्ष्य पेश किया । विद्वान् अधिकरण ने साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदार 4,05,500/- रुपए की धनराशि के प्रतिकर के लिए हकदार हैं ।

8. अपीलार्थी-बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि बीमा कंपनी इस कारण से प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी नहीं है कि बीमाकृत पक्षकार नहीं थी और बीमाकृत ने एक आश्रित के रूप में प्रतिकर का दावा किया है । यद्यपि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल की दलील आकर्षित करने वाली है तथापि, निम्नलिखित कारणों से इसमें कोई बल नहीं है । दावेदारों ने मृतक राकेश कुमार की असामयिक मृत्यु के कारण निर्भरता का स्रोत खो दिया है; वे पूर्णतया और असहाय और निःसहाय बन गए हैं ।

9. मृतक की पत्नी न केवल दावेदार है अपितु मृतक के माता-पिता और पुत्र भी दावेदार हैं और वे इस कारण से यानीय दुर्घटना के आहत होने के कारण प्रतिकर के लिए हकदार हैं कि उन्होंने आश्रितता का स्रोत खो दिया है । पत्नी ने न केवल निर्भरता का स्रोत खो दिया है अपितु उसका वैवाहिक गृह (ससुराल) भी समाप्त हो गई है । वह एक विधवा के रूप में रह रही है और कठिनाइयों का सामना कर रही है और वह इन कठिनाइयों का सामना अपनी मृत्यु होने तक पूरे जीवन काल में करेगी ।

10. मैं विधिक कमी को दूर करने के लिए मोटर यान अधिनियम की धारा 168 के साथ सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 1 नियम 10 और आदेश 41 के निबंधनों में दावेदार सं. 1 अर्थात् शशि बाला को पक्षान्तरित करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग करना उचित समझता हूं क्योंकि वह अपील में प्रत्यर्थी है तथा दावा आवेदन में पक्षकार है । उसे अपील में बीमाकृत के रूप में प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में और दावा आवेदन में पक्षकार बनाया गया है । कार्यालय को आदेश दिया जाता है कि वह आवश्यक सुधार करे ।

11. स्वीकृततः दुर्घटना यान के प्रयोग के कारण हुई है । यान बीमाकृत था और इसलिए बीमाकर्ता प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है ।

12. यहां यह उल्लेख उचित है कि अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल ने

इस आधार के सिवाय किसी अन्य आधार पर आक्षेपित अधिनिर्णय को आक्षेपित नहीं किया है कि दावा आवेदन केवल बीमाकर्ता और बीमाकृत के विरुद्ध फाइल किया गया था क्योंकि दावेदार ने प्रतिकर के लिए दावा किया है ।

13. चन्दन वर्मा और अनमोल वर्मा ने जो कि अवयस्क हैं, अपनी माता श्रीमती शशि बाला के द्वारा दावा आवेदन फाइल किया है । उन्होंने अभी तक वयस्कता प्राप्त नहीं की है । कार्यालय को यह निदेश दिया जाता है कि वह अपील के वाद शीर्षक में आवश्यक सुधार करे ।

14. यह देश की स्पष्ट विधि है और बार-बार दोहराया गया है कि प्रतिकर प्रदान करना यानीय दुर्घटनाओं के आहतों तथा नुकसान पहुंचने वाले व्यक्तियों की शीघ्रातिशीघ्र सहायता करने के लिए प्रतिपूर्ति करने के लिए है जो असहाय हो गए हैं और उन्हें सामाजिक बुराई से बचाना आवश्यक है । इस बारे में प्रक्रियात्मक कमियों या अन्य तकनीकी खामियों की कोई भूमिका नहीं है ।

15. अपील के लंबन के दौरान माता-पिता की मृत्यु हो गई है और दावेदार सं. 1 अर्थात् पत्नी ने प्रत्यर्थी सं. 2 के रूप में स्थान ले लिया है । अतः पुत्र-दावेदार अधिनिर्णीत धनराशि को समान अंशों में पाने के हकदार हैं । इस धनराशि का 50 प्रतिशत पुत्रों अर्थात् चंदन वर्मा और अनमोल वर्मा के नामों में सावधि जमा के रूप में 5 वर्ष की अवधि के लिए अनुसूचित बैंक में जमा किया जाएगा और शेष 50 प्रतिशत धनराशि के बारे में यह आदेश दिया जाता है कि कार्यालय द्वारा समुचित पहचान करने के पश्चात् अदाता चैक द्वारा खाते में चंदन वर्मा और अनमोल वर्मा के हक में धनराशि निर्मुक्त की जाए ।

16. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए आक्षेपित अधिनिर्णय को उपांतरित किया जाता है और अपील खारिज की जाती है । फाइल इस निर्णय की प्रति के साथ वापस भेजी जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य

बनाम

यूसुफ रजा और अन्य

तारीख 25 जुलाई, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – अधिकरण द्वारा चालक द्वारा यान को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने का निष्कर्ष निकाला जाना – चालक द्वारा इन निष्कर्षों को प्रश्नगत न करके बस स्वामियों द्वारा आक्षेपित किया जाना – ऐसे निष्कर्षों को केवल वह व्यक्ति प्रश्नगत करने का अधिकार रखता है जिसके विरुद्ध ऐसे निष्कर्ष निकाले गए हों न कि उससे भिन्न व्यक्ति ।

मोटर यान अधिनियम, 1988 – धारा 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – प्रतिकर का परिमाण – मृतक की आयु 23 वर्ष को दृष्टिगत करते हुए "13" का गुणक लागू किया जाना – अधिकरण द्वारा ठीक ही गुणक लागू किया गया है ।

इस अपील में मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण, त्वरित न्यायालय, चम्बा, हिमाचल प्रदेश द्वारा तारीख 16 फरवरी 2010 को पारित अधिनिर्णय को आक्षेपित किया गया । उक्त मामला यूसुफ रजा और अन्य बनाम हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य के शीर्षक से दावा याचिका सं. 62/2008/07 के रूप में फाइल किया गया था । उक्त मामले में उक्त निर्णय द्वारा और उक्त निर्णय के अधीन दावेदारों की ओर से उनके हक में और अपीलार्थियों के विरुद्ध 3,77,000/- रुपए की धनराशि के लिए प्रतिकर तथा दावा याचिका फाइल करने के तारीख से 7.5 प्रतिशत की दर से ब्याज अधिनिर्णीत किया गया था । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – अधिकरण ने सम्पूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् सभी विवाद्यक अपीलार्थियों और प्रत्यर्थी सं. 3 (चालक) के विरुद्ध और दावेदारों के हक में विनिश्चित किए । दावेदारों और चालक दोनों में से किसी ने भी आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत नहीं किया है और इसलिए

जहां तक यह उनसे संबंधित है, अन्तिम बन गया है । अधिकरण ने स्पष्ट रूप से ये निष्कर्ष अभिलिखित किए कि दुर्घटना, दुर्घटना कारित करने वाले बस के चालक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा बस को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसने उक्त निष्कर्षों को प्रश्नगत करना पसंद नहीं किया । क्या अपीलार्थी नियोजक होने के नाते आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत कर सकते हैं क्योंकि दुर्घटना उनके चालक की ओर से उपेक्षा बरतने के कारण हुई थी । इसका उत्तर नकारात्मक है । (पैरा 7 और 8)

मूल प्रत्यर्थी यह साबित करने में विफल रहे हैं कि दावा याचिका ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । मैंने अभिलेख का और दावा याचिका का गहराई से परिशीलन किया और उनका परिशीलन करने पर यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि दावा याचिका प्रथम दृष्टि में ग्रहण किए जाने योग्य है । अतः अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 3 प्रत्यर्थियों के विरुद्ध और दावेदारों के पक्ष में ठीक ही विनिश्चित किया गया है । जहां तक विवाद्यक सं. 2 का संबंध है दावेदारों ने अभिलेख पर यह साबित कर दिया है कि दावेदारों ने उपर्युक्त दुर्घटना में अपनी माता को खो दिया है । अधिकरण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मृतक घरेलू कार्य करती थी और मृतक की आय 3,000/- रुपए निर्धारित की । उसके वैयक्तिक खर्चों के संबंध में 1/3 को घटाने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया कि दावेदारों ने 2,000/- रुपए प्रतिमास तक की आय की निर्भरता का स्रोत खो दिया है जो किसी भी परिकल्पना के आधार पर अधिक नहीं कहा जा सकता है । घटना के समय मृतक की आयु अर्थात् 23 वर्ष को दृष्टिगत करते हुए अधिकरण द्वारा "13" का गुणक ठीक ही लागू किया गया है । अतः विवाद्यक के अधीन अधिकरण द्वारा अभिलिखित विवाद्यकों की भी पुष्टि की जानी है । (पैरा 10 और 11)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2010 की एफ. ए. ओ. सं. 172.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से श्री जगदीश ठाकुर

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री अनूप रतन, जीवेश शर्मा और अमित कुमार धूमल

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – इस अपील में मोटर दुर्घटना

दावा अधिकरण, त्वरित न्यायालय, चम्बा, हिमाचल प्रदेश (जिसे संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा तारीख 16 फरवरी 2010 को पारित अधिनिर्णय को आक्षेपित किया गया है । उक्त मामला यूसुफ रजा और अन्य बनाम हिमाचल सड़क परिवहन निगम और अन्य के शीर्षक से दावा याचिका सं. 62/2008/07 के रूप में फाइल किया गया था । उक्त मामले में उक्त निर्णय द्वारा और उक्त निर्णय के अधीन दावेदारों की ओर से (मेरे समक्ष के प्रत्यर्थी सं. 1 और 2) के हक में और अपीलार्थियों के विरुद्ध 3,77,000/- रुपए की धनराशि के लिए प्रतिकर तथा दावा याचिका फाइल करने के तारीख से 7.5 प्रतिशत की दर से ब्याज अधिनिर्णीत किया गया था ।

2. संक्षेप में मामले के तथ्य इस प्रकार हैं कि तारीख 24 जून, 2007 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न नालागढ़ बस अड्डे के बाहर मूल प्रत्यर्थी सं. 3 चेतराम जो प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 (मेरे समक्ष में के अपीलार्थी) का चालक है, बस को, जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी 12 4067 है, उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चला रहा था और इस प्रकार उसने बस चलाकर दुर्घटना कारित की जिसमें दावेदारों की माता परवीन बेगम को क्षतियां पहुंचीं और इन क्षतियों के कारण उसकी स्नातकोत्तर संस्थान, चण्डीगढ़ में मृत्यु हो गई । दावेदारों ने दावा याचिका में उल्लिखित तथ्यों और परिस्थितियों के अनुसार सात लाख रुपए की धनराशि के लिए प्रतिकर का दावा किया था ।

3. चालक (मेरे समक्ष में का प्रत्यर्थी सं. 3) ने और हिमाचल सड़क परिवहन निगम (मेरे समक्ष में के अपीलार्थी) ने जो बस के स्वामी हैं, ने दावा याचिका के विरुद्ध आक्षेप फाइल किए थे ।

4. अधिकरण द्वारा पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए गए थे :–

> "1. क्या श्रीमती परवीन बेगम की उस दुर्घटना में मृत्यु हुई थी जो तारीख 24 जून, 2007 को नालागढ़ बस अड्डे के बाहर और पुलिस थाना नालागढ़ की अधिकारिता के भीतर लगभग 5.30 बजे अपराह्न यान सं. एच पी 12 4067 के चालक द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी ? ओ. पी. पी.
>
> 2. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप में साबित होता है तो

क्या याची विधिक वारिस होने के नाते प्रतिकर के हकदार हैं और यदि हां तो उसकी धनराशि क्या होगी और वे प्रत्यर्थियों में से किस से पाने के हकदार हैं ? ओ. पी. पी.

3. क्या याचिका ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है जैसा कि अभिकथित किया गया है ? ओ. पी. पी.

4. प्रतितोष ।"

5. दावेदारों ने अपने दावे के समर्थन में पी. डब्ल्यू. 1 विपिन राज, पी. डब्ल्यू. 2 मलिका, पी. डब्ल्यू. 3 शमीम अख्तर और पी. डब्ल्यू. 4 अर्जुन सिंह की परीक्षा की जबकि प्रत्यर्थियों ने दुर्घटना करने वाली बस के चालक अर्थात् चेतराम की आर. डब्ल्यू. 1 के रूप में परीक्षा की । दावेदारों ने अभिलेख पर दस्तावेजी साक्ष्य अर्थात् विधिक वारिसान प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. ए., जमाबंदी की प्रति प्रदर्श पी. बी., शव-परीक्षा रिपोर्ट प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए तारीख 24 जून, 2007 की प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 159/07 की प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए, परिवार रजिस्टर की प्रति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए और मृत्यु प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी अभिलेख पर पेश किए ।

6. इसके प्रतिकूल मूल प्रत्यर्थियों (अर्थात् अपीलार्थी और प्रत्यर्थी सं. 3) ने चेतराम का शपथ-पत्र प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 1/ए और चालक अनुज्ञप्ति प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 1/बी अभिलेख पर पेश किए ।

7. अधिकरण ने सम्पूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् सभी विवाद्यक अपीलार्थियों और प्रत्यर्थी सं. 3 (चालक) के विरुद्ध और दावेदारों के हक में विनिश्चित किए । दावेदारों और चालक दोनों में से किसी ने भी आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत नहीं किया है और इसलिए जहां तक यह उनसे संबंधित है, अन्तिम बन गया है ।

8. अधिकरण ने स्पष्ट रूप से ये निष्कर्ष अभिलिखित किए कि दुर्घटना, दुर्घटना कारित करने वाले बस के चालक अर्थात् प्रत्यर्थी सं. 3 द्वारा बस को उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चलाने के कारण हुई थी जिसने उक्त निष्कर्षों को प्रश्नगत करना पसंद नहीं किया । क्या अपीलार्थी नियोजक होने के नाते आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत कर सकते हैं क्योंकि दुर्घटना उनके चालक की ओर से उपेक्षा बरतने के कारण हुई थी । इसका उत्तर नकारात्मक है ।

9. मैंने साक्ष्य का गहराई से परिशीलन किया और मेरा यह सुविचारित

मत है कि दावेदारों ने अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पेश करके यह साबित कर दिया है कि चालक चेतराम तारीख 24 जून, 2007 को लगभग 5.30 बजे अपराह्न दुर्घटना करने वाली बस को नालागढ़ बस अड्डे के बाहर उतावलेपन और उपेक्षापूर्वक चला रहा था और उसने दुर्घटना कारित की । तद्नुसार अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्ष की पुष्टि की जाती है ।

10. मूल प्रत्यर्थी यह साबित करने में विफल रहे हैं कि दावा याचिका ग्रहण किए जाने योग्य नहीं है । मैंने अभिलेख का और दावा याचिका का गहराई से परिशीलन किया और उनका परिशीलन करने पर यह पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जाता है कि दावा याचिका प्रथम दृष्टि में ग्रहण किए जाने योग्य है । अतः अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 3 प्रत्यर्थियों के विरुद्ध और दावेदारों के पक्ष में ठीक ही विनिश्चित किया गया है ।

11. जहां तक विवाद्यक सं. 2 का संबंध है दावेदारों ने अभिलेख पर यह साबित कर दिया है कि दावेदारों ने उपर्युक्त दुर्घटना में अपनी माता को खो दिया है । अधिकरण द्वारा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मृतक घरेलू कार्य करती थी और मृतक की आय 3,000/- रुपए निर्धारित की । उसके वैयक्तिक खर्चों के संबंध में 1/3 को घटाने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया गया कि दावेदारों ने 2,000/- रुपए प्रतिमास तक की आय की निर्भरता का स्रोत खो दिया है जो किसी भी परिकल्पना के आधार पर अधिक नहीं कहा जा सकता है । घटना के समय मृतक की आयु अर्थात् 23 वर्ष को दृष्टिगत करते हुए अधिकरण द्वारा "13" का गुणक ठीक ही लागू किया गया है । अतः विवाद्यक के अधीन अधिकरण द्वारा अभिलिखित विवाद्यकों की भी पुष्टि की जाती है ।

12. उपर्युक्त विवेचना को दृष्टिगत करते हुए यह सुरक्षित रूप से अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अधिकरण ने प्रतिकर ठीक ही अभिनिर्धारित किया है और तद्नुसार अपील खारिज किए जाने योग्य है और इसलिए यह अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

मह.

ओरियन्टल इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड

बनाम

कमला देवी और अन्य

तारीख़ 22 अगस्त, 2014

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर

मोटर यान अधिनियम, 1988 (1988 का 59) – धारा 163क और 166 – मोटर दुर्घटना – प्रतिकर के लिए दावा – बीमा कंपनी द्वारा यह आक्षेप उठाना कि मृतक ट्रैक्टर पर यात्रा कर रहा था – साक्ष्य से यह साबित होना कि घटना के समय मृतक ट्रैक्टर के ऊपर नहीं बैठा हुआ था अपितु वह ट्रैक्टर से नीचे उतर गया था – दावेदारों को प्रतिकर ठीक ही अधिनिर्णीत किया गया है ।

यह अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण कुल्लू द्वारा 2010 के दावा आवेदन सं. 33 में जो कमला देवी और अन्य बनाम गेहर सिंह और अन्य के शीर्षक से है, में तारीख 21 फरवरी, 2012 को पारित उस अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दावेदारों के हक में और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दावा आवेदन फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित 5,75,800/- रुपए की धनराशि के लिए प्रतिकर मंजूर किया गया है और आक्षेपित अधिनिर्णय का समाधान करने की जिम्मेदारी बीमाकर्ता/अपीलार्थी पर डाली गई है । अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विवाद्यक सं. 2 पर विचार करने के पूर्व न्यायालय प्रथमतः विवाद्यक सं. 3, 4 और 5 पर विचार करना उचित समझता है । विवाद्यक सं. 4 और 5 को साबित करने का भार बीमाकर्ता/अपीलार्थी पर था । बीमाकर्ता ने विवाद्यक सं. 5 को साबित करने के लिए इस बारे में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि चालक के पास प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । अन्यथा भी सुनवाई के दौरान अपीलार्थी/बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने चालन अनुज्ञप्ति की विधिमान्यता को आक्षेपित नहीं किया है । अतः अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 5 के बारे में दिए गए निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है । जहां तक विवाद्यक सं. 3 और 4 का संबंध है, बीमाकर्ता यह साबित करने

में विफल रहा है कि बीमाकृत ने जानबूझकर कोई भंग कारित किया था । यह साबित करना बीमाकर्ता का कर्तव्य था कि वह इस बारे में अभिवचन करते हुए यह साबित करे कि स्वामी ने बीमा पालिसी में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों का जानबूझकर कोई भंग किया है । अपीलार्थी/बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मृतक दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर में यात्रा कर रहा था जो कि बीमा पालिसी के भंग में है और यह परमिट में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों के अतिक्रमण में भी है । अभिलेख का परिशीलन करने पर कोई भी यह अकाट्य निष्कर्ष निकाल सकता है कि मृतक ट्रैक्टर में यात्रा कर रहा था । तथापि, वह सुसंगत समय पर ट्रैक्टर से उतर गया था और पत्थर लगाकर ट्रैक्टर को रोकने का प्रयास कर रहा था । इस तथ्य को साबित करने के लिए कि मृतक सुसंगत समय पर दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर पर नहीं बैठा हुआ था, दावेदारों ने पी. डब्ल्यू. 4 घनश्याम की परीक्षा कराई है जिसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि मृतक यान में नहीं बैठा हुआ था अपितु वह यान से उतर गया था और उसने उस पर पत्थर लगाकर उसे रोकने का प्रयास किया था और इस प्रकार वह टायर के नीचे कुचल गया था । दुर्घटना करने वाले यान के चालक अर्थात् कुंदन ने आर. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित होकर यह भी कहा है कि मृतक सुसंगत समय पर ट्रैक्टर पर नहीं बैठा हुआ था अपितु वह उतर गया था और पीछे जाकर ट्रैक्टर को रोकने का प्रयत्न कर रहा था जिसमें वह विफल हुआ और कुचल गया । अधिकरण ने ऊपर उल्लिखित अभिवचनों की परीक्षा करने के पश्चात् यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि मृतक दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर में यात्रा नहीं कर रहा था अपितु वह उतर गया था और इस प्रकार वह एक तृतीय पक्षकार (पर-व्यक्ति) था । अधिकरण ने विवाद्यक सं. 3 और 4 के संबंध में ठीक ही निष्कर्ष निकाला है जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है । (पैरा 9, 10, 11, 14 और 15)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की प्रथम अपील सं. 308.

मोटर यान अधिनियम, 1988 की धारा 173 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	श्री ललित के. शर्मा
प्रत्यर्थियों की ओर से	सर्वश्री महेश शर्मा और नवीन के. भारद्वाज

मुख्य न्यायमूर्ति मंसूर अहमद मीर – यह अपील मोटर दुर्घटना दावा अधिकरण कुल्लू, (जिसे आगे संक्षेप में "अधिकरण" कहा गया है) द्वारा 2010 के दावा आवेदन सं. 33 में जो कमला देवी और अन्य बनाम गेहर सिंह और अन्य के शीर्षक से है, में तारीख 21 फरवरी, 2012 को पारित उस अधिनिर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा दावेदारों के हक में और प्रत्यर्थियों के विरुद्ध दावा आवेदन फाइल करने की तारीख से वसूली की तारीख तक 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज की दर सहित 5,75,800/- रुपए की धनराशि के लिए प्रतिकर मंजूर किया गया है और आक्षेपित अधिनिर्णय का समाधान करने की जिम्मेदारी बीमाकर्ता/अपीलार्थी पर डाली गई है ।

2. चालक और स्वामी/बीमाकृत ने आक्षेपित निर्णय को प्रश्नगत नहीं किया है और इसलिए उनके विरुद्ध यह अंतिम बन गया है । केवल बीमाकृत द्वारा आक्षेपित अधिनिर्णय को इस आधार पर प्रश्नगत किया गया है कि अधिकरण ने बीमा कंपनी पर संदाय का दायित्व डालने में गलती की है ।

3. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना । अपील खारिज किए जाने योग्य है और आक्षेपित अधिनिर्णय निम्नलिखित कारणों से पुष्ट किए जाने योग्य है ।

संक्षिप्त तथ्य :

4. दावेदार मोटर यान अधिनियम की धारा 166 के निबंधनों में अधिकरण की अधिकारिता के भीतर हुई यानीय दुर्घटना से आहत हुए हैं और उन्होंने दावा आवेदन में उल्लिखित आधारों पर 20 लाख रुपए के प्रतिकर की मंजूरी के लिए दावा किया है । आवेदन में यह प्रकथन किया गया है कि तारीख 18 अगस्त, 2010 को मृतक ट्रैक्टर जिसका रजिस्ट्रीकरण सं. एच पी 34 ए 0715 है, में यात्रा कर रहा था जिसे इसका चालक अर्थात् कुंदन उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था । जब ट्रैक्टर चोंग नामक स्थान पर पहुंचा तो ट्रैक्टर के चालक ने दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर पर अपना नियंत्रण खो दिया और टक्कर से बचने के लिए मृतक उक्त ट्रैक्टर के टायर के नीचे पत्थर लगाने के लिए नीचे उतरा और इस प्रक्रिया में ट्रैक्टर ने मृतक को कुचल दिया ।

5. स्वामी/बीमाकृत, चालक और बीमाकर्ता/अपीलार्थी ने उत्तर फाइल

करके दावा आवेदन का विरोध किया ।

6. अधिकरण ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर निम्नलिखित विवाद्यक विरचित किए :–

"1. क्या चित्रदेव की प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में यान चलाने के कारण दुर्घटना में मृत्यु हुई ? ओ. पी. पी. ।

2. यदि विवाद्यक सं. 1 सकारात्मक रूप में साबित होता है तो आवेदक कितनी मात्रा में प्रतिकर के लिए हकदार हैं ? ओ. पी. पी.।

3. क्या बीमा कंपनी क्षतिपूर्ति कर्ता के रूप में प्रतिकर का संदाय करने के लिए दायी है ? ओ. पी. पी. ।

4. क्या यान बीमा पालिसी के निबंधनों और शर्तों के भंग में चलाया जा रहा था ? ओ. पी. पी. आर.-3 ।

5. क्या दुर्घटना के समय प्रत्यर्थी सं. 2 के पास एक प्रभावी और विधिमान्य चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी ? ओ. पी. पी. आर.-3 ।

6. अनुतोष ।"

7. दावेदारों ने अपने दावे को साबित करने के लिए पी. डब्ल्यू. 1 कमला देवी (दावेदार), पी. डब्ल्यू. 2 राजेश बोध, पी. डब्ल्यू. 3 एल. सी. भुवनेश्वरी और पी. डब्ल्यू. 4 घनश्याम की परीक्षा कराई जबकि प्रत्यर्थियों ने कुंदन लाल (चालक) की आर. डब्ल्यू. 1 के रूप में, दिलेर सिंह और अशोक कुमार की क्रमशः आर. डब्ल्यू. 2 और आर. डब्ल्यू. 3 के रूप में परीक्षा कराई । दावेदारों ने अभिलेख पर दस्तावेज प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 1/ए, पी. डब्ल्यू. 1/बी, पी. डब्ल्यू. 2/ए, पी. डब्ल्यू. 3/ए और पी. डब्ल्यू. 4/ए अर्थात् शपथ-पत्र, मृत्यु प्रमाणपत्र, शवपरीक्षण रिपोर्ट, नील चंद का शपथ-पत्र और प्रथम इत्तिला रिपोर्ट की प्रति फाइल की । प्रत्यर्थियों ने अभिलेख पर प्रदर्श आर. डब्ल्यू. 1/ए (कुंदन लाल का शपथ-पत्र) और प्रदर्श आर-1 से आर-7 अर्थात् क्रमशः चालक अनुज्ञप्ति, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र, बीमा, माल कर रसीदें और माल वहन परमिट दस्तावेज दाखिल किए ।

8. अधिकरण ने सम्पूर्ण साक्ष्य की परीक्षा करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दावेदारों ने मौखिक तथा दस्तावेजी साक्ष्य द्वारा यह साबित कर दिया है कि दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर का चालक ट्रैक्टर को

उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था और उसने दुर्घटना कारित की । अतः इस संबंध में विरचित विवाद्यक सं. 1 दावेदारों के हक में विनिश्चित किया गया था । उक्त विवाद्यक के बारे में कोई विवाद नहीं किया गया है । तथापि, मैंने अभिलेख का परिशीलन किया और मेरा यह सुविचारित मत है कि अधिकरण ने विवाद्यक सं. 1 दावेदारों के हक में ठीक ही विनिश्चित किया है ।

9. विवाद्यक सं. 2 पर विचार करने के पूर्व मैं प्रथमतः विवाद्यक सं. 3, 4 और 5 पर विचार करना उचित समझता हूं । विवाद्यक सं. 4 और 5 को साबित करने का भार बीमाकर्ता/अपीलार्थी पर था । बीमाकर्ता ने विवाद्यक सं. 5 को साबित करने के लिए इस बारे में कोई साक्ष्य पेश नहीं किया है कि चालक के पास प्रभावी चालन अनुज्ञप्ति नहीं थी । अन्यथा भी सुनवाई के दौरान अपीलार्थी/बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने चालन अनुज्ञप्ति की विधिमान्यता को आक्षेपित नहीं किया है । अतः अधिकरण द्वारा विवाद्यक सं. 5 के बारे में दिए गए निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है ।

10. जहां तक विवाद्यक सं. 3 और 4 का संबंध है, बीमाकर्ता यह साबित करने में विफल रहा है कि बीमाकृत ने जानबूझकर कोई भंग कारित किया था । यह साबित करना बीमाकर्ता का कर्तव्य था कि वह इस बारे में अभिवचन करते हुए यह साबित करे कि स्वामी ने बीमा पालिसी में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों का जानबूझकर कोई भंग किया है । अपीलार्थी/बीमाकर्ता के विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि मृतक दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर में यात्रा कर रहा था जो कि बीमा पालिसी के भंग में है और यह परमिट में उल्लिखित निबंधनों और शर्तों के अतिक्रमण में भी है ।

11. अभिलेख का परिशीलन करने पर कोई भी यह अकाट्य निष्कर्ष निकाल सकता है कि मृतक ट्रैक्टर में यात्रा कर रहा था । तथापि, वह सुसंगत समय पर ट्रैक्टर से उतर गया था और पत्थर लगाकर ट्रैक्टर को रोकने का प्रयास कर रहा था । वह ट्रैक्टर के नीचे आ गया । यह बात दावा आवेदन के पैरा 24(1) में इस प्रकार उल्लिखित की गई है :–

> "1. दुर्भाग्यपूर्ण दिवस अर्थात् तारीख 18 अगस्त, 2010 को मृतक चित्रदेव ट्रैक्टर सं. एच पी 34 ए 0715 पर बैठा हुआ था क्योंकि वह इसमें रेत ले जा रहा था । प्रत्यर्थी सं. 2 इस ट्रैक्टर को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था । जब ट्रैक्टर चोंग

मोड़ के निकट पहुंचा तो प्रत्यर्थी सं. 2 ट्रैक्टर पर नियंत्रण नहीं रख सका और इसलिए मृतक ट्रैक्टर से नीचे उतर गया और उसने टायरों के नीचे पत्थर लगाकर ट्रैक्टर को रोकने का प्रयत्न किया, तथापि, इसके पश्चात् भी प्रत्यर्थी सं. 2 ट्रैक्टर पर नियंत्रण नहीं कर सका । अतः प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा ट्रैक्टर को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के कारण दुर्घटना हुई और उसने टायर के नीचे मृतक को कुचल दिया । अतः उक्त दुर्घटना में मृतक की मृत्यु हो गई जो कि दुर्घटना प्रत्यर्थी सं. 2 द्वारा ट्रैक्टर को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के कारण हुई थी ।"

12. स्वामी/बीमाकृत और चालक (दावा आवेदन में प्रत्यर्थी सं. 1 और 2) ने दावा आवेदन के जवाब में संयुक्त उत्तर फाइल किया था जिसमें उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया कि सुसंगत समय पर मृतक ट्रैक्टर से नीचे उतर गया था और ट्रैक्टर के पीछे गया और अचानक ट्रैक्टर पीछे चला गया जिसके कारण मृतक टायर के नीचे कुचल गया । यहां उत्तर के पैरा 10 को उद्धृत करना उपयोगी होगा । उन्होंने दावा आवेदन के पैरा 24(1) के जवाब में जो कथन किया है वह इस प्रकार है :–

"10. आवेदन के पैरा 24(1) में यह कहना गलत है कि चित्रदेव प्रश्नगत यान पर बैठा हुआ था, तथापि, प्रत्यर्थी सं. 2 ने यह उत्तर दिया है कि वह ट्रैक्टर पर अपना रेत ले जा रहा था । यह कहना भी गलत है कि प्रत्यर्थी सं. 2 ट्रैक्टर को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चला रहा था । इस बात से भी इनकार किया जाता है कि जब ट्रैक्टर चोंग मोड़ के निकट पहुंचा तो प्रत्यर्थी सं. 2 ट्रैक्टर पर नियंत्रण नहीं रख सका और मृतक ट्रैक्टर से उतर गया और उसने टायरों के नीचे पत्थर अड़ा कर ट्रैक्टर को रोकने का प्रयत्न किया । इस बात से भी इनकार किया जाता है कि दुर्घटना प्रत्यर्थी सं. 2 के द्वारा ट्रैक्टर को उतावलेपन और उपेक्षापूर्ण रीति में चलाने के कारण हुई थी । तथ्यतः प्रत्यर्थी सं. 2 ने चोंग मोड़ पर ट्रैक्टर को रोका था और वह पेशाब करने के लिए उतरा था और जब वह वापस गया तो मृतक ट्रैक्टर के पीछे आ गया और ट्रैक्टर अचानक पीछे जाने लगा और इसलिए मृतक उसके टायर के नीचे आ गया और इस प्रकार उसकी क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । उत्तर देने वाले प्रत्यर्थी द्वारा यान को चलाने में कोई उपेक्षा नहीं बरती गई थी ।"

13. यद्यपि, बीमाकर्ता ने दावा आवेदन के पैरा 21 से इनकार किया है तथापि, उसने ऊपर उद्धृत पैरा 21(1) में उल्लिखित प्रकथनों का कोई विनिर्दिष्ट उत्तर नहीं दिया है ।

14. इस तथ्य को साबित करने के लिए कि मृतक सुसंगत समय पर दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर पर नहीं बैठा हुआ था, दावेदारों ने पी. डब्ल्यू. 4 घनश्याम की परीक्षा कराई है जिसने विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा है कि मृतक यान में नहीं बैठा हुआ था अपितु वह यान से उतर गया था और उसने उस पर पत्थर लगाकर उसे रोकने का प्रयास किया था और इस प्रकार वह टायर के नीचे कुचल गया था । दुर्घटना करने वाले यान के चालक अर्थात् कुंदन ने आर. डब्ल्यू. 1 के रूप में उपस्थित होकर यह भी कहा है कि मृतक सुसंगत समय पर ट्रैक्टर पर नहीं बैठा हुआ था अपितु वह उतर गया था और पीछे जाकर ट्रैक्टर को रोकने का प्रयत्न कर रहा था जिसमें वह विफल हुआ और कुचल गया ।

15. अधिकरण ने ऊपर उल्लिखित अभिवचनों की परीक्षा करने के पश्चात् यह ठीक ही अभिनिर्धारित किया है कि मृतक दुर्घटना करने वाले ट्रैक्टर में यात्रा नहीं कर रहा था अपितु वह उतर गया था और इस प्रकार वह एक तृतीय पक्षकार (पर-व्यक्ति) था । अधिकरण ने विवाद्यक सं. 3 और 4 के संबंध में ठीक ही निष्कर्ष निकाला है जिसमें किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

16. जहां तक विवाद्यक सं. 2 का संबंध है, दावेदारों ने प्रतिकर की पर्याप्तता को प्रश्नगत नहीं किया है । बीमाकर्ता ने भी इस बिन्दु पर आक्षेपित अधिनिर्णय को प्रश्नगत नहीं किया । अतः इस विवाद्यक के अधीन अधिकरण द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों की पुष्टि की जाती है ।

17. उपर्युक्त को दृष्टिगत करते हुए अपील विफल होती है और यह खारिज की जाती है तथा आक्षेपित अधिनिर्णय की पुष्टि की जाती है । प्रतिकर की धनराशि अधिनिर्णय के निबंधनों के अनुसार दावेदारों के हक में निर्मुक्त की जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मह.